संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

हिन्दी

वर्ष : १२
अंक : १०४
अगस्त २००१
भाद्रपद मास
विक्रम.सं. २०५८

वसुदेव सुतं देवं कंस चाणूरमर्दनम् । देवकी परमानंदं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ॥

जन्माष्टमी महोत्सव : १२ अगस्त २००१

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय, लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुति यज्ञ विभूषिताय, गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥

गणेश चतुर्थी : २२ अगस्त २००१

दिल्ली में पूज्य बापू का सत्संग... उसमें भी गुरु पूर्णिमा का पावन पर्व... तो फिर भक्तों के उत्साह का तो पूछना ही क्या !...

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १२
अंक : १०४
१ अगस्त २००१
भाद्रपद मास, विक्रम संवत् २०५८ (गुज. २०५७)
सम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
E-Mail : ashramamd@ashram.org
Web-Site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : प्रे.खो.मकवाणा
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

* काव्य गुंजन *

युवानो जागो !

पाश्चात्य संस्कृति के आकर्षण से त्रस्त हैं युवाजन,
भारतीय परिवेश से निकलकर चकाचौंध में मस्त हैं युवाजन।
उस आकुलता को समेटता हुआ 'युवाधन सुरक्षा अभियान',
व्यग्रता को समीपता से सहलाता हुआ युवाजनों का कल्याण।
सुरक्षा अभियान की मन्दगति से बढ़ती हुई यह प्रबलंधारा,
आन्दोलित करेगी युवातनों को, मनों को उमड़ती हुई शीतल धारा।
अमृतवाणी पूज्य बापू की भरती है इसमें मधुरता अविरल,
जागो, उठो, वीरबर जगालो प्रेम उस असीम सत्ता से प्रतिपल।
अन्धानुकरण उस पाश्चात्य जीवन का जो स्वयं है दिशाहीन,
कैसे कर सकेगा तुम्हारा कल्याण जो स्वयं है पथ विहीन।
युवाधन सुरक्षा अभियान के इस पावन प्रकाश में,
प्रज्वलित कर लो मन के दीप इस उज्ज्वल आकाश में।
हो जायेगा पल्लवित यह तुम्हारा शुष्कता से भरा लौकिक उपवन,
अन्तस में उद्दीप्त हो जायेगा परम ज्ञान का अलौकिक स्पन्दन।

*

त्यागो नाता अब अज्ञान से

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में, जो युवाजन का हो रहा है पतन,
उसे सँभालो, बचा लो पूज्य बापू का है यह अद्भुत परिपक्व वचन।
युवाधन की जो पूँजी संचित है, हमारी संस्कृति में सनातन सत्य,
छोड़कर उस परम पावन विभूति को युवानों का हो गया मन असत्।
सौन्दर्य प्रतियोगिता के नाम पर भारतीय नारी का शोषण निरन्तर,
क्या नहीं है ! यह पाश्चात्य-प्रभाव, विदेशी उत्पादों का प्रचार अनन्तर।
क्या भारतीय सौन्दर्य को प्रशंसा के लिए आवश्यक है विदेशी अनुशंसा,
सावित्री, अनुसूया, मदालसा, नारी गौरव की हैं बेमिसाल प्रशंसा।
कैसा है अधःपतन इस विश्व पूजिता संस्कृति और सनातन का,
अखिल विश्व ने इसे सराहा है, पूजा है, संजोया है कृपा यतन का।
पाश्चात्य विचारों का खुला मंचन, नहीं करते समीक्षक इसका मंथन,
इस अज़नाब खंड की धरोहर को नवीन परिवेश में करने दो स्पन्दन।
गौरवशाली अतीत को वर्तमान परिदृश्य में निहारो सुजन,
विज्ञान की कसौटी पर अतीत की विशालता का नित्य प्रसादी मनन।
प्राचीन संस्कृति की महिमा और गरिमा को आत्मसात करते चलो,
नियमित और संयमित जीवन की डगर 'ऋषि प्रसाद' में खोजते चलो।
जीवन के अवसाद को ऋषि प्रणीत दर्पण में नित्य करो दर्शन,
समाज को उन्नत करो परिष्कृत जीवन से प्राणिमात्र में करो ईश दर्शन।
पाश्चात्य विचारों की आँधी रोक लो तुम तपस्या और ज्ञान से,
मार्गदर्शक, विश्वगुरु बनना है बीरवर त्यागो नाता अब अज्ञान से।

- गिरीश चन्द्र दीक्षित, आगरा।

ज्ञानवान् की अवस्था

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

श्री अष्टावक्रजी महाराज कहते हैं :

ज्ञः सचिन्तोऽपि निश्चिन्त : सेन्द्रियोऽपि निरिन्द्रियः ।
सबुद्धिरपि निर्बुद्धिः साहंकारोऽनहंकृतिः ॥

'ज्ञानी चिन्तायुक्त भी चिन्तारहित है, इन्द्रियों सहित भी इन्द्रियों रहित है, बुद्धिसहित भी बुद्धिरहित है तथा अहंकारयुक्त भी अहंकाररहित है।' (अष्टावक्रगीता : १८.९५)

ज्ञानवान् महापुरुष खाता हुआ, नाचता हुआ, लेता हुआ, देता हुआ... सब करता हुआ भी अंदर से अकर्त्ता होता है। शरीर में रहते हुए भी शरीर से भिन्न होता है। जैसे, तुम्हारी आँखों की पलकें बंद होती हैं खुलती हैं, श्वास आता-जाता है, रक्तवाहिनियों में रक्त बहता रहता है लेकिन तुम इन सबका अहंकार नहीं करते ! ऐसे ही शरीर से जो क्रियाएँ होती हैं उन क्रियाओं का भी ज्ञानी को अहंकार नहीं होता।

जो कुछ चेष्टा होती है, मनोमय शरीर की होती है, अन्नमय शरीर तो प्रतिक्रिया मात्र है। जैसे, क्रोध आता है मन में लेकिन प्रतिक्रिया शरीर द्वारा होती है। जब भीतर क्रोध आता है तो आँखें लाल हो जाती हैं, मुट्ठियाँ भिंच जाती हैं, दाँत पिसने लगते हैं...

अपने विषय में ज्ञान होता है, दूसरे के विषय में अनुमान होता है। जब क्रोध आता है तो आपको अनुभव होता है, दूसरे की प्रतिक्रिया देखकर अनुमान होता है कि : 'फलाना क्रोधित है' लेकिन सामनेवाला यदि रंगमंच पर हो तो क्रोध का अभिनय

करते हुए भी भीतर से वह शांत होता है। ऐसे ही ज्ञानवान् महापुरुष बाहर से क्रोधी, लोभी, कामी, मोही दिख सकते हैं किन्तु उनके विषय में यह हमारा अनुमान है क्योंकि हमने अभी तक ज्ञान का अनुभव नहीं किया। जैसे, रंगमंच पर क्रोध का अभिनय करनेवाला व्यक्ति क्रोध से रहित होता है ऐसे ही ज्ञानवान् सब करते हुए भी भीतर से अकर्त्ता होता है। इसीलिए अष्टावक्रजी महाराज कहते हैं :

सचिन्तोऽपि निश्चिंतः... ज्ञानी चिंतायुक्त भी चिंतारहित है। **सेन्द्रियोऽपि निरिन्द्रियः...**। इन्द्रियों सहित भी इन्द्रियों से रहित है।

ज्ञानी सदा प्रसन्न होते हैं लेकिन जिन अर्थों में आप प्रसन्नता मानते हो, उन अर्थों में उनकी प्रसन्नता नहीं है। वे शांत होने की भी इच्छा नहीं करते और खुश रहने की भी इच्छा नहीं करते। क्यों ? क्योंकि इच्छा उस चीज की होती है जो नहीं है। अशांत व्यक्ति शांत होने की इच्छा करेगा, नाखुश व्यक्ति खुश होने की इच्छा करेगा, दुःखी व्यक्ति सुखी होने की इच्छा करेगा। ज्ञानवान् को कोई इच्छा नहीं होती क्योंकि वे समझते हैं कि : 'इच्छा मात्र नासमझी से उठती है और मन की कल्पना है, मनोमय शरीर का खेल है। अन्नमय शरीर का अपना खेल है, मनोमय शरीर का अपना खेल है। इन दोनों खेलों को जो देख रहा है, दोनों खेलों को जो सत्ता दे रहा है वह खिलाड़ी मैं स्वयं हूँ।' इसीलिए वे सदैव प्रसन्न रहते हैं। ये आत्मिक सूझबूझ के धनी आत्मधन से तृप्त रहते हैं।

संसार को सच्चा माननेवाला व्यक्ति संसार के विषय में सोचता है। इज्जत को सर्वोपरि माननेवाला व्यक्ति अपनी इज्जत के लिए सोचता है। धर्म को सुख का साधन माननेवाला व्यक्ति धर्म के विषय में सोचता है। स्वर्ग की इच्छावाला व्यक्ति स्वर्ग के विषय में सोचता है। जो आत्मा से अतिरिक्त किसीकी सत्ता मानते हैं वे अन्य सुखों के बारे में सोचते हैं लेकिन जिसने आत्मा का अनुभव कर लिया उसके लिए क्या सोचना बाकी रहा ?

पैसे बचाना है तो इन्कमटैक्स का सोचें, इज्जत बचानी है तो लोगों का सोचें, शरीर बचाना है तो आयुर्वेदिक ढंग से सोचें लेकिन जो जानते हैं कि शरीर पाँच भूतों का पुतला है, उसको न बचाना है, न हटाना है, अपने-आपमें रहना है। वे किसी सोच-विचार में नहीं पड़ते। उनको जिस समय जैसा स्पंदन हो जाता है, वैसा ही वे करते हैं। जैसे, बालक को जैसी मौज आ गयी, वैसा ही वह करता है, पीपल का सूखा पत्ता वायु का झोंका लगने पर वायु की दिशा में उड़ जाता है, ऐसे ही ज्ञानी महापुरुष प्रारब्धवेग के अनुसार वर्तते हैं। कर्त्तव्यबुद्धि से रहित होकर उनसे जिस समय जैसा हो जाता है, वैसा कर देते हैं। शुभ और अशुभ उनको लेपायमान् नहीं करते।

इसीलिए श्रीकृष्णजी ने कहा है :

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम्॥

'वह सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिए शोक करता है और न किसीकी आकांक्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियों में समभाववाला योगी मेरी पराभक्ति को प्राप्त हो जाता है।' (गीता : १८.५४)

सोच-विचार और आकांक्षाएँ वे ही करते हैं, जिनको आत्मज्ञान का पता नहीं है, जिनको आध्यात्मिक खजाने का पता नहीं है, जो मन और इन्द्रियों की झपेट में आ गये हैं। जिन्होंने जान लिया कि :

'शरीर पाँच भूतों का पुतला है... पानी की बूँद पैदा हुई, गुनगुना रही है, हँस रही है, रो रही है, अपने जैसा बच्चा पैदा कर रही है, फिर हँसती-खेलती, रोती-गाती मिट्टी में मिल जायेगी... ऐसे कई आये और कई चले गये।' ऐसे महापुरुष जगत के व्यवहारों में फिर सत्यबुद्धि नहीं रखते, सत्यबुद्धि से व्यवहार नहीं करते।

हमको जो दिखता है वह जगत सच्चा लगता है। जिस आत्मदेव से दिखता है उसका पता नहीं। जिससे दिखता है ज्ञानी उस आत्मदेव से एकाकार होकर, जो दिखता है उसे बदलनेवाला व मिथ्या मानकर वर्तते हैं। ज्ञानी और अज्ञानी में

इतना ही फर्क है ।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : 'हे रामजी ! जिसको आत्मज्ञान होता है उसको ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी प्यार करते हैं। ऐसा आत्मज्ञान पाने के लिए कोई परिश्रम नहीं है । आत्मज्ञान पाने के लिए कुछ छोड़ना नहीं है और कुछ पाना नहीं है केवल जो कचरा पकड़ रखा है, उसे छोड़ना है । ज्ञान पाना कठिन नहीं है लेकिन अज्ञान छोड़ना बड़ा कठिन है ।

सत्संग हमेशा ज्ञानी-अज्ञानी की दृष्टि का संवाद होता है। सत्संग में ही अपने जीवन की पुस्तक पढ़ी जाती है । किसी दुकान, मकान या होटल में तुम्हारे जीवन की किताब नहीं खुलेगी, सत्संग में ही जीवन की किताब खुलेगी। जीवन की किताब इतनी साफ-सुथरी हो कि चाहे जो पढ़ ले । जीवन की किताब साफ-सुथरी होती है गुरुकृपा से ।

सद्गुरुओं का यह बड़े-में-बड़ा योगदान है । संसारी उपलब्धियाँ कोई करा दे यह बड़ी बात नहीं है, कोई विशेष लाभ नहीं है लेकिन हमारा अज्ञान मिट जाये यह बड़े-में-बड़ी बात है। जब सद्गुरु के श्रीमुख से शुभ संकल्प का विचार निकलता है, हमारे कल्याण का संकल्प करके गुरु जो देते हैं, कहते हैं या डाँटते भी हैं उसमें हमारा कल्याण ही है ।

स्वामी अखंडानंद सरस्वती साधक थे तब की बात है, उनके गुरु उड़िया बाबा लोगों के बीच उनकी दो पैसे की इज्जत कर देते थे । एक बार मौका मिलने पर अखंडानंदजी ने पूछ लिया :

''गुरुजी ! आप लोगों के बीच हमको इतना डाँटते हैं। गुरुजी ! आप कुछ कहना चाहें तो अकेले में कह दिया करें।''

उड़िया बाबा : ''भाई ! संसार में जाओगे तो न जाने कितने-कितने लोगों का सुनना पड़ेगा ? उन अज्ञानियों का सुनोगे उससे अच्छा तो हमारा सुनो। गुरु का सुनोगे तो दूसरों का पचा लोगे। गुरु की डाँट या गाली पचा ली तो दूसरों की असर नहीं करेगी और अगर गुरु की नहीं पचायी तो न जाने दिन में कितने लोग दुःखी व विक्षिप्त करके जायेंगे । फिर जितना कीर्ति से सुख होगा उतना अपकीर्ति से दुःख भी होगा तो तुम झुलसते रहोगे। समता नहीं आयेगी।''

जिसने पूर्ण गुरुकृपा प्राप्त कर ली ऐसा ज्ञानवान् फिर किसी बंधन में नहीं बँधता । वह सब करते हुए भी अकर्त्ता होता है, चिंतायुक्त भी चिन्तारहित होता है, इंद्रियों सहित भी इंद्रियों रहित होता है, अहंकारसहित भी अहंकाररहित होता है । इसीलिए अष्टावक्रजी महाराज कहते हैं :

ज्ञः सचिन्तोऽपि निश्चिन्त : सेन्द्रियोऽपि निरिन्द्रियः ।
सबुद्धिरपि निर्बुद्धिः साहंकारोऽनहंकृतिः ॥

धनभागी हैं जिनको ऐसे परमात्म-ज्ञान की प्यास लगी है। उनसे भी धनभागी वे हैं जिनको ऐसे अनुभवसंपन्न सत्पुरुष की प्राप्ति हो गयी है ।

*

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सत्य समान तप नहीं...

यह हम लोगों की भ्रांति है कि : 'जो सत्य बोलता है वह मरता है, फँसता है। झूठ बोला तो काम बन गया। अति सीधे न होइये, कुछ टेढ़ापन रखिये। सीधी, अच्छी, सुन्दर लकड़ी तो सब काट लेते हैं और टेढ़ी होती है तो नहीं काटते। इसलिए एकदम सीधे नहीं, कुछ टेढ़ापन रखना चाहिए।'

लेकिन यह बात सच्ची नहीं है कि सीधी लकड़ी कटती है, टेढ़ी नहीं। देर-सवेर दोनों कटती हैं। सीधी जल्दी कट जाती है, टेढ़ी देर से। सीधी को सहना पड़ता है, काट-छाँट होती है लेकिन पूजा-मंदिर में, फर्नीचर में सीधी लकड़ी ही काम आती है। उसकी आयुष्य लंबी होती है और टेढ़ी लकड़ी ईंधन में जलायी जाती है। ऐसे ही टेढ़े आदमी, छल-कपटवाले आदमी नरकाग्निरूपी ईंधन में डाले जाते हैं और सत्यनिष्ठ व्यक्ति जन लोक, तप लोक, मह लोक आदि लोकों में जाकर अंत में परमपद तक पहुँच जाते हैं।

जो लोग बोलते हैं कि झूठ बोले बिना व्यापार नहीं चलता है, उन लोगों को सत्य के प्रभाव का पता ही नहीं। स्वामी माधवतीर्थ के पास एक वकील आये और बोले :

''स्वामीजी! आप तो कहते हैं कि साधक को सत्य बोलना चाहिए। मैं साधक तो हूँ लेकिन माफ करना... मैं वकालत करता हूँ। अगर गुरु की आज्ञा मानता हूँ तो बच्चे भूखे मरते हैं और बच्चों को पालता हूँ तो गुरु की आज्ञा का उल्लंघन होता है। क्या करूँ ? अगर झूठ नहीं बोलता हूँ तो 'केस' फेल हो जाता है, मेरी 'फीस' चट हो जाती है और वकालत में भी अयोग्य साबित होता हूँ।''

स्वामी माधवतीर्थ : ''वकालत में शायद तुम अयोग्य साबित हो जाओगे लेकिन भगवान के घर तुम योग्य हो जाओगे।''

गाँधीजी वकालत में जरा 'फेल' हो गये क्योंकि सच्चे केस लेते थे। वकालत में सफल नहीं हुए लेकिन चालीस करोड़ के तारणहार हो गये। हजारों-हजारों वकीलों की जहाँ पहुँच नहीं, वहाँ राष्ट्रपिता के रूप में उनकी स्मृति लोगों को होती है। सत्य में बड़ी ताकत है।

बुद्धिमान् व्यक्ति को यदि बड़ा लाभ होता है तो वह छोटा लाभ छोड़ देता है। बड़े लाभ के लिए छोटा लाभ छोड़ देना-यह बुद्धिमत्ता है और छोटे लाभ को पकड़कर बड़ा लाभ छोड़ देना- यह मूर्खता है। दो सौ रुपये की नौकरी पकड़े रखो और दो हजार की छोड़ दो, दो हजार की नौकरी पकड़े रखो और बीस हजार की छोड़ दो तो यह समझदारी नहीं है। बड़ा लाभ होता हो तो छोटे लाभ को छोड़ देना चाहिए।

झूठ बोलने से रुपयों का लाभ होता है लेकिन रुपयों से ज्यादा यश का लाभ होता है। कई लोग रुपये खर्च करके भी यश कमाते हैं और यश के लाभ से भी स्वर्ग का लाभ ऊँचा माना जाता है। जो गुप्त सत्कर्म अथवा गुप्त दान करते हैं उन्हें स्वर्ग के सुख की प्राप्ति होती है और जो स्वर्ग के लाभ का भी त्याग करता है उसको आत्मलाभ मिलता है। रुपयों की अपेक्षा यश, यश की अपेक्षा स्वर्ग और स्वर्ग की अपेक्षा आत्मलाभ ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। अगर आत्मलाभ पाना चाहते हो, सर्वोपरि लाभ पाना चाहते हो तो सत्य का रास्ता लो और रुपया उचित लगे तो तुम्हारी मर्जी।

छोटे लाभ के आगे साधक इतना प्रभावित नहीं होता। थोड़ी रूखी-सूखी खा लेता है, थोड़ा दुःख-कष्ट सह लेता है लेकिन झूठ बोलने में जल्दबाजी नहीं करता। जो कपट करता है उसको तो सौ जन्मों में भी भगवान नहीं मिलते।

मूर्ख मनुष्य संसार में फँसते हैं, कष्ट उठाते हैं, दुःख भोगते हैं, छल-कपट करके भी सुखी होना चाहते हैं और उतने ही दुःख, मुसीबत और परेशानियों में पड़ते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य सत्य का आश्रय लेकर परम सत्यस्वरूप परमात्मा को पा लेते हैं एवं सदा के लिए सभी दुःख, मुसीबतों एवं परेशानियों से मुक्त हो जाते हैं।

सत्य समान तप नहीं, झूठ समान नहिं पाप।
जाके हिरदे सत्य है, ताके हिरदे आप॥

सत्य से ही धरती में रस है, अन्न पैदा करने का सामर्थ्य भी तप और सत्य के बल से ही है। अभी धरती सत्य और धर्म के बल से ही टिकी है। अभी भी समाज में कहीं सुख-शांति है तो वह सत्य और धर्म के कारण ही है।

सत्यनिष्ठ व्यक्ति को कोई सताये तो उस पर कुदरत का कोप उतरता है, सत्य की इतनी भारी महिमा होती है। कपटी लोगों को झूठे लोगों को सत्य की महिमा का पता ही नहीं चलता।

झूठे आदमी की कीमत घट जाती है। झूठे व्यक्ति का प्रभाव घट जाता है। जो झूठ बोलता है उसकी विश्वसनीयता घट जाती है। झूठे व्यक्ति की बुद्धि मारी जाती है, बुद्धिमान् की भी बुद्धि नष्ट हो जाती है। झूठ का आश्रय लेकर कोई चतुर होना चाहे तो उलटे मुँह गिरता है।

अपना आचरण-व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि अपने लोग तो अपने पर विश्वास करें लेकिन दूसरे लोग भी अपने पर विश्वास करें। दुकानदार पर ग्राहक की विश्वसनीयता होती है, तभी वह सफल दुकानदार होता है। नेता पर जनता की विश्वसनीयता होती है तभी वह सफल नेता होता है। ऐसे ही पति की पत्नी पर और पत्नी की पति पर विश्वसनीयता होती है तभी गृहस्थ जीवन सफल होता हैं। शिष्य अपने गुरु की विश्वसनीयता प्राप्त कर ले तो सफ़ल जीवन है, नहीं तो धिक्कार है जीवन को।

जिनकी बुद्धि झूठ-कपट का आश्रय लेकर संसार का सुख खोजती है उनको सुख के बदले मुसीबतें ज्यादा मिलती हैं। जैसे, दाद की बीमारी में खुजलाते वक्त बड़ा मजा आता है लेकिन खुजलाते-खुजलाते मुसीबत-पीड़ा बढ़ जाती है। ऐसे ही सत्य के आश्रय बिना का जो सुख है, सत्यस्वरूप ईश्वर के बिना का जो सुख है, वह दाद की खुजली जैसा है। प्रारंभ में जरा बढ़िया लगता है लेकिन अंत में बहुत दुःख देता है।

एक झूठ बोलो, उसको बचाने के लिए हृदय तो धड़कता है और दूसरे १० झूठ बोलने पड़ते हैं। देर-सवेर झूठ बोलनेवाले का मुँह तो काला हो ही जाता है लेकिन झूठ बोलनेवाले के साथी का भी सत्यानाश हो जाता है। जबकि सत्य बोलनेवाले का धीरे-धीरे जय-जयकार हो जाता है और उसके आश्रितों का भी जय-जयकार होने लग जाता है। गाँधीजी सत्यनिष्ठ थे तो उनका जय-जयकार हो गया, दुनिया जानती है।

सत्य भले ही शुरू में कड़वा लगे लेकिन परिणाम में हितकारी है। बुद्धि में जब सत्य की प्रीति होगी तो सत्य की प्रीति सत्यस्वरूप परमात्मा के ज्ञान में टिक सकेगी लेकिन जो झूठ-कपट करेगा उसकी बुद्धि सत्यस्वरूप में नहीं टिक सकेगी। इसीलिए सत्य का आश्रय लेना चाहिए।

बड़े-में-बड़ा पापी वह है जो झूठ बोलता है। बड़े-में-बड़ा पुण्यात्मा वह है जो सत्य बोलता है- **सत्य समान तप नहीं...** ऐसे पुण्यात्माओं को तो शत्रु भी आदर की दृष्टि से देखते हैं। गाँधीजी के लिए अंग्रेज भले मुँह पर कुछ-का-कुछ कह देते थे लेकिन भीतर से मानते थे कि वह एक ईमानदार व्यक्ति है।

सत्य ही भगवान है और झूठ-कपट शैतान है। जो सत्य की तरफ झुका समझो वह ईश्वर की तरफ झुका और जो कपट की तरफ झुका वह मुसीबत की तरफ झुका। अतः छल-कपट का सर्वथा त्याग करें एवं सत्य का ही आश्रय लें।

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, गाँधीजी आदि वकील थे फिर भी उन्होंने सत्य का आश्रय लिया तो प्रसिद्ध हो गये। कोई साधक होते हैं, साधना के मार्ग पर चलते हैं और छल-कपट का आश्रय लेते हैं तो उनकी योग्यता नष्ट हो जाती है, दिया हुआ अनुदान चला जाता है, मिली हुई कृपा नष्ट हो

जाती है । जबकि सच्चाई से अपनी योग्यता निखरती है, दिया हुआ अनुदान, दी हुई कृपा और अधिक निखरती है । इसलिए सच्चाई का आश्रय लें जिससे स्वयं का, कुटुम्ब का, समाज का एवं राष्ट्र का कल्याण हो ।

*

ज़रूरत है लगन और दृढ़ता की...

एक शिष्य ने अपने गुरु से कहा : ''गुरुजी ! आपके पास रहते हुए मुझे २२ साल हो गये । मैं रोज नंगे पैर चलता हूँ, भिक्षा माँगकर खाता हूँ, संसार के आकर्षण से बचा हूँ फिर भी अभी तक मुझे कोई अनुभूति नहीं हुई, अभी तक साक्षात्कार नहीं हुआ ?''

गुरुजी ने चिट्ठी लिखकर कहा :

''तू राजा जनक के पास ज्ञान लेने के लिए जा ।''

शिष्य चल पड़ा । जाते-जाते रास्ते में सोचने लगा : 'गुरुजी ने राजा जनक के पास से ज्ञान लेने के लिए कहा है लेकिन राजा जनक तो राज्य कर रहे हैं, राज्य-सुख भोग रहे हैं वे मुझे आत्मसुख कैसे देंगे ?''

राजा जनक के दरबार में पहुँचने पर शिष्य ने देखा कि 'राजा जनक सिंहासन पर बैठे हैं, सुंदरियाँ चँवर डुला रही हैं, भाट-चारण जयघोष कर रहे हैं, सामने महफ़िल की तैयारी है । राजा जनक का अभिवादन करते हुए शिष्य ने कहा :

''गुरुजी ने मुझे आपके पास ज्ञान लेने के लिए भेजा है । मैं २२ साल से गुरुजी के साथ हूँ फिर भी साक्षात्कार का अनुभव नहीं हुआ है । मैं गलती से आ तो गया हूँ, अब आप मुझे उपदेश दीजिये ।''

राजा जनक समझ गये कि 'यह बाहर के सदोष शरीर को देख रहा है, वास्तविकता का इसे पता ही नहीं है । राजा जनक ने कहा :

''यहाँ जो आता है उसे एक बार महल अवश्य घूमना पड़ता है । महल भूलभूलैया जैसा है । दिया लेकर जाओ । दिया बुझ जायेगा तो उलझ जाओगे । यदि दिया जलता रहेगा तो बाहर निकल जाओगे ।''

शिष्य हाथ में दिया लेकर गया । राजा ने कहा था महल भूलभूलैया जैसा है । दिया बुझ न जाये इसलिए खूब जतन से, खूब सँभल-सँभलकर, बड़ी सतर्कता से शिष्य महल घूमकर आ गया एवं राजा जनक के पास गया ।

जनक : ''महल कैसा लगा ? महल में क्या-क्या देखा ? महल में कैसे-कैसे चित्र लगे थे ? तख्तियों पर क्या-क्या लिखा था ? कैसे-कैसे आकर्षक गलीचे बिछे थे ?''

शिष्य : ''मैंने कुछ नहीं देखा । मुझे कुछ पता नहीं है । मेरी नज़र तो दिये पर थी कि कहीं दिया न बुझ जाये ! मैं महल में जरूर था, गलीचे पर ज़रूर घूम रहा था लेकिन मेरा ध्यान न महल में था न गलीचे पर वरन् केवल दिये पर था ।''

जनक : ''वत्स ! ऐसे ही मैं ज्ञानरूपी दिये के साथ रहता हूँ । बाहर से सारा व्यवहार करते हुए भी अंदर से सतर्क रहता हूँ कि ज्ञान का दिया बुझ न जाये । खाते समय भी मैं साक्षी रहता हूँ कि भोजन शरीर कर रहा है । मच्छर काटता है तो मैं उसका भी साक्षी रहता हूँ कि शरीर को मच्छर ने काटा है । उसको भगाने का भी साक्षी रहता हूँ । क्रोध के समय भी उसका साक्षी रहता हूँ । इस प्रकार ज्ञानरूपी दिये को कभी बुझने नहीं देता ।''

'मैं शरीर से अलग हूँ' ऐसा ज्ञानरूपी दिया अगर सतत जलता रहे तो क्रोध के समय क्रोध तपा नहीं सकता, लोभ के समय लोभ डिगा नहीं सकता, मोह मोहित नहीं कर सकता, अहंकार उलझा नहीं सकता । ज्ञानरूपी दिया जलता रहे तो आप भी संसाररूपी भूलभूलैया में नहीं उलझ सकते ।

१२ वर्ष व्रत-उपवास करने से जो पुण्य नहीं होता, वह पुण्य, वह लाभ इस सतर्कता से हो जाता है ।

फिर राजा जनक ने शिष्य को भोजन करने के लिए बैठाया । वह जहाँ भोजन करने बैठा था वहाँ क्या देखता है कि ऊपर एक बड़ी शिला एक पतले धागे से लटक रही है । शिष्य भोजन तो कर रहा था लेकिन आँखें ऊपर लगी थीं कि कहीं शिला गिर न जाये ?

भोजन करके जब वह राजा जनक के पास

आया तो राजा ने पूछा : ''एक-से-एक, बढ़िया-से-बढ़िया व्यंजन थे। कौन-सा अच्छा लगा ?''

शिष्य : ''महाराज ! मैंने तो बस खा लिया। क्या बढ़िया था इसका मुझे पता नहीं है। मुझे तो ऊपर मौत दिख रही थी। शिला कहीं गिर न जाये, उसी पर मेरी दृष्टि लगी थी।''

जनक : ''बस, ऐसे ही हमारी दृष्टि लगी रहती है कि कहीं हमारा एक पल भी परमात्मा के चिंतन से खाली न जाये। इसीलिए हम राजकाज करते हुए भी निर्लेप रहते हैं।

अब मैं तुझे उपदेश करता हूँ। अगर आज रात्रि के बारह बजे तक तुझे साक्षात्कार नहीं हुआ तो जो यह तलवार टँगी है, इससे तेरा मस्तक काट दिया जायेगा।

शिष्य : ''महाराज मुझे ज्ञान-ध्यान कुछ नहीं करना है। बस, मुझे जाने दो।''

जनक : ''यहाँ एक बार जो आता है उसे हम खाली नहीं जाने देते। यहाँ का यही रिवाज है।

शिष्य : ''२२ साल में जो काम नहीं हुआ वह एक दिन में कैसे हो जायेगा।''

जनक : ''नहीं होगा तो मस्तक कट जायेगा। इतना समय बिगाड़ा और तुम अज्ञानी रहे ?''

शिष्य उपदेश सुनने के लिए बैठा। 'कहीं मस्तक न कट जाये' इस डर से बड़े ध्यान से, एकाग्र होकर उपदेश सुनने लगा।

जनक : ''तुझे लगन नहीं थी इसीलिए २२ साल गुज़र गये वरना २२ घण्टे भी काफी हो जाते हैं।''

जैसे कोई परीक्षा होती है तो बालक कितनी एकाग्रता से पढ़ता है किंतु परीक्षा रद्द कर दो तो उतनी एकाग्रता नहीं रह जाती। अतः साधक को चाहिए कि पूर्ण एकाग्रता के साथ गुरूपदेश का श्रवण करे, मनन-निदिध्यासन करे।

वह शिष्य भी एकाग्र होकर उपदेश सुनने लगा, उसका मन धीरे-धीरे शांत होता गया एवं बुद्धि बुद्धिदाता में प्रतिष्ठित होने लगी। काम बन गया।

ज़रूरत है तो पूर्ण लगन की। यदि साधक के जीवन में लगन है, उत्साह है, एकाग्रता है और तत्परता है तो वह अवश्य अपनी मंजिल हासिल कर सकता है।

एक ब्राह्मण कई दिनों से एक यज्ञ कर रहा था, किन्तु उसे सफलता नहीं मिल रही थी। राजा विक्रमादित्य वहाँ से गुजरे। ब्राह्मण का उतरा हुआ चेहरा देखकर पूछा : ''ब्राह्मण देव ! क्या बात है ? आप इतने उदास क्यों हैं ?''

ब्राह्मण : ''मैं इतने दिनों से यज्ञ कर रहा हूँ पर मुझे अभी तक अग्नि देवता के दर्शन नहीं हुए।''

विक्रमादित्य : ''यज्ञ ऐसे थोड़े ही किया जाता है।''

ब्राह्मण : ''तो कैसे किया जाता है ?''

विक्रमादित्य ने म्यान में से तलवार निकाली और संकल्प किया कि 'यदि आज शाम तक अग्निदेव प्रगट नहीं हुए तो इसी तलवार से अपने मस्तक की आहुति दे दूँगा।'

विक्रमादित्य ने कुछ आहुतियाँ ही दीं और अग्निदेव प्रगट हो गये ! बोले : 'वर माँगो।'

विक्रमादित्य ने कहा : ''इन ब्राह्मण देवता की इच्छा पूरी करें, देव।''

ब्राह्मण : ''मैंने कितने प्रयत्न किये आप प्रगट नहीं हुए। राजा ने ज़रा-सी आहुतियाँ दीं और आप प्रगट हो गये। यह कैसे ?''

अग्निदेव : ''राजा ने जो किया दृढ़ता और लगन से किया। दृढ़ता एवं लगनपूर्वक किया गया कार्य जल्दी परिणाम लाता है। इसीलिए मैं शीघ्र प्रगट हो गया।''

साधन-भजन भी दिलचस्पी से होना चाहिए। पूर्ण लगन-उत्साह एवं दृढ़ता से किया हुआ साधन-भजन शीघ्र फल देता है नहीं तो वर्षों बीत जाते हैं थोड़ा-थोड़ा जमा होता है वह भी बेवकूफी के कारण टिकता नहीं।

*

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १०६ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अगस्त २००१ के अंत तक अपना नया पता भिजवा दें।

ओंकारोपासना

कठोपनिषद अध्याय १, वल्ली २, मंत्र १६ व १७ में आता है :

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

यह अक्षर ही अपर ब्रह्म है और यह अक्षर ही परब्रह्म है। इस अक्षर को जानकर जो जिसकी इच्छा करता है वह उसका हो जाता है। यही श्रेष्ठ आलंबन है और यही परम आलंबन । इस आलंबन को जानकर ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

ॐ ईश्वर का संपन्न और शक्तिशाली नाम है। यह लघु प्रभावशाली बीजमंत्र है । विश्व का प्रत्येक व्यक्ति इससे लाभान्वित हो सकता है । यह सभी मंत्रों का सिरमौर है। महर्षि वेदव्यासजी कहते हैं : **प्रणवः मंत्राणां सेतुः ।**

अर्थात ॐ मंत्रों को पार करने के लिए अर्थात सिद्धि के लिए पुल के सदृश है।

ॐ कार साधना से आत्मबल प्राप्त होता है। अग्निपुराण के अध्याय २७२ में कहा गया है कि इस प्रणव को जानकर जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, उसको उसी की प्राप्ति हो जाती है। जो मनुष्य प्रतिदिन १२००० (बारह हजार) प्रणव का जप करता है, उसको १२ माह में परब्रह्म का ज्ञान हो जाता है।

यजुर्वेद (२-१३ व ४०-१५) में मानवमात्र के कल्याण के लिए आदेश दिया गया है कि :

ॐ प्रतिष्ठ ॐ क्रतो स्मर ।

अर्थात हे कर्मशील ! ॐ का स्मरण कर । ॐ पर निश्चय रख । लौकिक जीवन को सुखी व सम्मानित बनाने तथा पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिए शक्तिशाली, प्रभावी व सचोट साधना है - ॐकार साधना।

सौभाग्यप्रदायक ॐ कारोपासना ।

धनहीन, विद्याहीन, बलहीन, बुद्धिहीन, आशाहीन व्यक्ति भी, जिसकी संसार में कोई कद्र न हो, जो जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी असमर्थ हो, ऐसा दीन-हीन मनुष्य भी यदि सच्ची लगन से नियम पूर्वक एक वर्ष तक प्रतिदिन ३ घंटे 'ॐ' का जप करे तो उसकी दशा पलट जायेगी।

निष्काम भाव से केवल भगवद्प्रीत्यर्थ 'ॐ' का जप करनेवाले साधक को एक माह में ही विलक्षण आनंद का अनुभव होने लगता है। उसे ऐसा आभास होता है जैसे कोई उसकी सतत् रखवाली कर रहा है।

मानवजीवन सुख-दुःख व अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का पुंज है। कभी-कभी मनुष्य विकट परिस्थिति में फँस जाता है । उसे समझ में नहीं आता कि क्या करें ? दिग्मूढ़ की स्थिति हो जाती है। ऐसी संकटपूर्ण परिस्थिति में भी 'ॐ' के जप का सहारा लिया जा सकता है।

३ माह तक नियमित रूप से ३ घंटे प्रातः एवं ३ घंटे शाम को ॐ का ह्रस्व जप करने से कैसी भी कठिन विपत्ति हो उसका निवारण हो जाता है।

दीर्घ प्रणवमुच्चार्य मनोराज्यं विलीयते ।

ॐ का लम्बा उच्चारण करने से मन की चंचलता का नाश होता है। शांति व गंभीरता का उदय हो जाता है।

जप के लिए उपयुक्त स्थान के विषय में बताते हुए श्रीगुरुगीता में शिवजी कहते हैं :

सागरान्ते सरित्तीरे तीर्थे हरिहरालये ॥
शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे ।
वटस्य धात्र्या मूले वा मठे वृन्दावने तथा ॥
पवित्रे निर्मले देशे नित्यानुष्ठानतोऽपि वा ।
निर्वेदनेन मौनेन जपमेतत् समारभेत् ॥

सागर या नदी के तट पर, तीर्थ में, शिवालय

में, विष्णु के या देवी के मंदिर में, गौशाला में, सभी शुभ देवालयों में, वटवृक्ष के या आँवले के वृक्ष के नीचे, मठ में, तुलसीवन में, पवित्र निर्मल स्थान में, नित्यानुष्ठान के रूप में अनासक्त रहकर मौनपूर्वक इसके जप का आरंभ करना चाहिए।

जाप्येन जयमाप्नोति जपसिद्धिं फलं तथा।
हीनकर्म त्यजेत्सर्वं गर्हितस्थानमेव च॥

जप से जय प्राप्त होता है तथा जप की सिद्धिरूप फल मिलता है। जपानुष्ठान के काल में सभी नीच कर्म और निन्दित स्थान का त्याग करना चाहिए।

स्मशाने बिल्वमूले वा वटमूलान्तिके तथा।
सिद्ध्यन्ति कानके मूले चूतवृक्षस्य सन्निधौ॥

स्मशान में, बिल्व, वटवृक्ष या कनकवृक्ष के नीचे और आम्रवृक्ष के पास जप करने से सिद्धि जल्दी होती है।

स्कंदपुराण ब्रा. खण्ड २५/६ में श्री महादेवजी कहते हैं :

प्रणवस्याधिकारो न तवास्ति वरवार्णिनि।
नमो भगवते वासुदेवायेति जपः सदा॥

''पार्वती! प्रणव जप में तुम्हारा अधिकार नहीं है। अतः तुम्हें सदा 'नमो भगवते वासुदेवाय' इसी मंत्र का जप करना चाहिए।''

चातुर्मास में व्रत-उपासना-तप करके 'ॐ'कार जप की योग्यता प्राप्त करने का उपाय बताते हुए आगे कहते हैं :

''जब तुम चातुर्मास में भगवान की प्रसन्नता के लिए तप करोगी तब प्रणव सहित द्वादशाक्षर के जप करने के योग्य होओगी।''

संत श्री आसारामजी आश्रम अमदावाद की निम्नलिखित शाखाओं में उपासना-अनुष्ठान की यथोचित व्यवस्था की गयी है।

गुजरात : अमदावाद, सूरत, भेटासी, विसनगर, लुणावाड़ा, मोड़ासा। **मध्यप्रदेश** : भोपाल, इंदौर, छिंदवाड़ा, पंचेड़। **महाराष्ट्र** : उल्हासनगर, प्रकाशा, नागपुर। **दिल्ली**। **उत्तर प्रदेश** : आगरा, वृंदावन, मुजफ्फरनगर, गाजियाबाद। देहरादून **(उत्तरांचल)**। **हरियाणा** : अम्बाला, पानीपत, करनाल। **पंजाब** : लुधियाना। **राजस्थान** : पुष्कर, जोधपुर, कोटा, सुमेरपुर, आमेट, उदयपुर। **आंध्रप्रदेश** : हैदराबाद।

मंत्रदीक्षित साधक अपने करीब के आश्रम में पूर्वानुमति लेकर लाभ उठा सकते हैं। महिलाओं के लिए महिला उत्थान आश्रम अमदावाद व शक्ति हाऊस छिंदवाड़ा (म.प्र.) में व्यवस्था की गयी है।

उपरोक्त आश्रमों का पता एवं फोन नंबर आश्रम द्वारा प्रकाशित सत्साहित्य में देख सकते हैं।

७ दिवसीय मौन साधना हेतु कुछ आश्रमों में मौन मंदिर की भी व्यवस्था है। यहाँ मंत्रदीक्षित साधकों को ही प्रवेश दिया जाता है। रूबरू आकर पंजियन कराना होता है। पंजियन कराने के १ वर्ष के भीतर ही साधना का सुअवसर प्राप्त हो जाता है। १ माह पूर्व सूचना दी जाती है।

चातुर्मास की अमृतवेला में उपासना-अनुष्ठान करके अपना जीवन सार्थक बनायें। हाथ में आये हुए इस अमृत अवसर को न खोयें।

''पति पत्नि में प्रेमपूर्वक जो समागम होता है वही एक-दूसरे की प्रसन्नता को बढाने वाला होता है। बलपूर्वक स्त्रियों का संभोग करने से पुरुषों को क्या प्रसन्नता होती है और कौन-सा सुख मिलता है? जो प्रेम न करती हो, रोगिणी हो, गर्भवती हो अथवा किसी व्रत का पालन करनेवाली हो, रजस्वला और रति की इच्छा न रखनेवाली हो ऐसी स्त्री के साथ पुरुष को बलपूर्वक समागम की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।'' (स्कं.पु. ब्राह्मोत्तर खण्ड)

स्वस्थ व दीर्घ जीवन के इच्छुक स्त्री-पुरुषों को चातुर्मास में खास संयम बरतना चाहिए।

*

सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः॥

समस्त पुण्यों, श्रेय के संपूर्ण साधनों और समस्त यज्ञों में जपयज्ञ को ही सर्वोत्तम माना गया है। (स्कं.पु. ब्राह्मोत्तर खण्ड १-७)

अतः चातुर्मास में जपयज्ञ अनुष्ठान का विशेष माहात्म्य है।

चातुर्मास्य माहात्म्य

संसार में मनुष्य जन्म दुर्लभ है उसमें भी उत्तम कुल में जन्म पाना और दुर्लभ है। कुलीन होने पर भी दयालु स्वभाव का होना और भी कठिन है। यह सब होने पर भी कल्याणमय सत्संग प्राप्त होना और भी दुर्लभ है। जहाँ सत्संग नहीं, भगवान की भक्ति नहीं और व्रत नहीं है वहाँ कल्याण की प्राप्ति दुर्लभ है। विशेषतः चातुर्मास में व्रत करने वाला मनुष्य उत्तम माना गया है। संसार में मनुष्य का जन्म और भगवान की भक्ति दोनों ही दुर्लभ हैं। पुष्कर, प्रयाग अथवा किसी महातीर्थ के जल में स्नान करना पुण्यप्रद माना गया है। नर्मदा, भास्कर क्षेत्र, प्राची, सरस्वती तथा समुद्र संगम में एक दिन भी जो चातुर्मास में स्नान करता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। जो नर्मदा में एकाग्रचित्त होकर तीन दिन भी चौमासे का स्नान करता है उसके पाप के सहस्रों टुकड़े हो जाते हैं। जो गोदावरी नदी में सूर्योदय के समय चौमासे में पन्द्रह दिन तक स्नान करता है वह कर्मजनित शरीर का परित्याग करके भगवान के धाम में जाता है।

जो मनुष्य तिल एवं आँवला मिश्रित जल से अथवा बिल्व पत्र के जल से चातुर्मास में स्नान करता है उसमें दोष का लेषमात्र भी नहीं रह जाता। चातुर्मास में पापनाशिनी गंगाजी का माहात्म्य विशेषरूप से प्रगट होता है। चातुर्मास में भगवान नारायण जल में शयन करते हैं अतः उसमें भगवान विष्णु के तेज का अंश व्याप्त रहता है। उस समय गंगा में किया गया स्नान सब तीर्थों से अधिक फल देनेवाला होता हैं। बिना स्नान के जो पुण्य कार्य, शुभकर्म किया जाता है वह निष्फल होता है उसे राक्षस ग्रहण कर लेते हैं।

स्नानेन सत्यमाप्नोति स्नानं धर्मः सनातनः।
धर्मान्मोक्षफलं प्राप्य पुनर्नैवावसीदति॥

(स्क. पु. ब्रा. खण्ड १/२५)

स्नान से मनुष्य सत्य को पाता है। स्नान सनातन धर्म है, धर्म से मोक्षरूप फल पाकर मनुष्य फिर दुःखी नहीं होता। रात को और संध्याकाल में बिना ग्रहण के स्नान न करें। गर्म जल से भी स्नान नहीं करना चाहिए।

चातुर्मास में विशेषरूप से जल की शुद्धि होती है। इस समय तीर्थ और नदी आदि में स्नान करने का विशेष महत्व है। नदियों के संगम में स्नान के पश्चात पितरों एवं देवताओं का तर्पण करके जप, होम आदि करने से अनंत फल की प्राप्ति होती है।

चातुर्मास सब गुणों से युक्त समय है। इसमें धर्मयुक्त श्रद्धा से पवित्र शुभ कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए।

सत्संगे द्विजभक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम्।
गोप्रदानं वेदपाठः सत्क्रिया सत्यभाषणम्॥
गोभक्तिर्दानभक्तिश्च सदा धर्मस्य साधनम्।

(स्क. पु. ब्रा. २/५-६)

सत्संग, भक्ति, गुरु, देवता और अग्नि का तर्पण, गोदान, वेदपाठ, सत्कर्म, सत्यभाषण, गोभक्ति और दान में प्रीति ये सब सदा धर्म के साधन हैं। देवशयनी एकादशी से देवउठनी एकादशी तक उक्त धर्मों का साधन एवं नियम महान् फल देनेवाला है।

यदि मनुष्य चौमासे में भक्तिपूर्वक योग के अभ्यास में तत्पर न हुआ तो निःसंदेह उसके हाथ से अमृत गिर गया।

बुद्धिमान मनुष्य को सदैव मन को संयम में रखने का प्रयत्न करना चाहिए। मन के भलीभाँति वश में होने से ही पूर्णतः ज्ञान की प्राप्ति होती है।

सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः।
सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः॥
धर्ममूलमहिंसा च मनसा तां च चिन्तयन्।
कर्मणा च तथा वाचा तत एतां समाचरेत्॥

(स्क. पु. ब्रा. २/१८-१९)

एकमात्र सत्य ही परमधर्म है। एक सत्य ही परम तप है। केवल सत्य ही परम ज्ञान है और सत्य में ही धर्म की प्रतिष्ठा है। अहिंसा धर्म का

मूल है। इसलिए उस अहिंसा को मन, वाणी और क्रिया के द्वारा आचरण में लाना चाहिए।

पराये धन का अपहरण और चोरी आदि पापकर्म सदा सब मनुष्यों के लिए वर्जित हैं। चातुर्मास में इनसे विशेषरूप से बचना चाहिए। न करने योग्य कर्मों का आचरण विद्वान पुरुषों के लिए सदैव त्याज्य है। जो संपूर्ण कार्यों में निष्काम भाव से प्रवृत्त होता है, जिसमें अहम् बुद्धि का अभाव है जो बुद्धि के नेत्रों से ही देखता है ऐसा पुरुष ही महाज्ञानी और योगी है। मनुष्य कामना के त्याग द्वारा क्रोध और लोभ को जीते, शांति के द्वारा मोह और मन को जीतकर विचार के द्वारा शांति भाव को अपनाना चाहिए। संतोष से भी शांति का उदय होता है। जो अपनी कोमलता और सरलता के द्वारा ईर्ष्या भाव को दबा देता है वह मुनीश्वर है।

चातुर्मास में जीव दया विशेष धर्म है। प्राणियों से द्रोह करना कभी भी धर्म नहीं माना गया है। इसलिए मनुष्यों को सर्वथा प्रयत्न करके प्राणियों के प्रति दया करनी चाहिए। जिस धर्म में दया नहीं है वह दूषित माना गया है। सब प्राणियों के प्रति आत्मभाव रखकर सबके ऊपर दया करना सनातन धर्म है, जो सब पुरुषों के द्वारा सदा सेवन करने योग्य है।

सब धर्मों में दान धर्म की विद्वान लोग सदा प्रशंसा करते हैं। चातुर्मास में अन्न, जल, गो का दान, प्रतिदिन वेदपाठ और अग्नि में हवन - ये सब महान् फल देनेवाले हैं। सद्धर्म, सद्कथा, सद्पुरुषों की सेवा, संतों का दर्शन, भगवान विष्णु का पूजन सत्कर्मों में संलग्न रहना और दान में अनुराग होना - ये सब बातें चातुर्मास में दुर्लभ बतायी गयी हैं। चौमासे में दूध, दही, घी एवं मट्ठा का दान महाफल देनेवाला होता है। जो चौमासे में भगवान की प्रीति के लिए विद्या दान, गोदान व भूमि दान करता है वह अपने पूर्वजों का उद्धार कर देता है। विशेषतः चातुर्मास में अग्नि में आहुति, भगवद्भक्त एवं पवित्र ब्राह्मणों को दान और गौओं की भलीभाँति सेवा, पूजा करनी चाहिए।

मनुष्य सदा प्रिय वस्तु की इच्छा करता है। जो चातुर्मास में अपने प्रिय भोगों का श्रद्धा एवं प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है उसकी त्यागी हुई वे वस्तुएँ उसे अक्षय रूप में प्राप्त होती हैं। गृहस्थ मनुष्य ताँबे के पात्र में कदापि भोजन न करे। चौमासे में ताँबे के पात्र में भोजन विशेषरूप से त्याज्य है। धातु पात्रों का त्याग करके पलाशपत्र, मदारपत्र, वटपत्र में भोजन करने का अनुपम फल बताया गया है। मिर्च, उड़द और चने का सेवन वर्जित है। काले, नीले रंग का वस्त्र त्याग देना चाहिए। नीले वस्त्र को देखने से जो दोष लगता है उसकी शुद्धि भगवान सूर्यनारायण के दर्शन से होती है। कुसुम्भ रंग (लाल) व केसर का त्याग कर देना चाहिए। भूमिशयन करना चाहिए। असत्य भाषण के त्याग से मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है।

परनिन्दा महापापं परनिन्दा महाभयम्।
परनिन्दा महद्दुःखं न तस्याः पातकं परम्॥

(स्क. पु. ब्रा. ४/२५)

चातुर्मास में परनिन्दा का विशेषरूप से परित्याग करे। परनिन्दा महान् पाप है। परनिन्दा महान् भय है। परनिन्दा महान् दुःख है और परनिन्दा से बढ़कर दूसरा कोई पातक नहीं है।

परनिन्दा को सुननेवाला भी पापी होता है। चौमासे में हजामत त्याग दे, नाखून न काटे।

चातुर्मास में ब्रह्मचर्य आदि का सेवन अधिक फलप्रद होता है। धर्म में संलग्न होना तप है। व्रतों में सबसे उत्तम तप है ब्रह्मचर्य का पालन। ब्रह्मचर्य तपस्या का सार और महान् फल देनेवाला है। ब्रह्मचर्य से बढ़कर धर्म का उत्तम साधन दूसरा नहीं है। चातुर्मास में भगवान विष्णु के शयन करने पर यह महान् व्रत संसार में अधिक गुणकारक है। देवशयनी एकादशी के बाद जो यह प्रतिज्ञा करता है कि : ''हे भगवन्! मैं आपकी प्रसन्नता के लिए अमुक सत्कर्म करूँगा।'' और उसका पालन करता है उसी को व्रत कहते हैं। यह व्रत अधिक गुणोंवाला होता है। अग्निहोत्र, भक्ति, धर्मविषयक श्रद्धा, उत्तम बुद्धि, सत्संग, सत्य भाषण, हृदय में दया, सरलता एवं कोमलता, मधुर वाणी, उत्तम चरित्र में अनुराग, वेदपाठ, चोरी का त्याग, अहिंसा, लज्जा, क्षमा, मन एवं इन्द्रियों का संयम, लोभ, क्रोध और मोह का अभाव, इन्द्रिय संयम में प्रेम, वैदिक कर्मों का उत्तम ज्ञान तथा श्रीकृष्ण को अपने चित्त का समर्पण - इन नियमों को अंगीकार करें। व्रत का यत्नपूर्वक पालन करें।

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

भक्त सेन नाई

'भक्तमाल' में एक कथा आती है :

बघेलखंड के बाँधवगढ़ में राजा वीरसिंह का राज्य था । वीरसिंह बड़ा भाग्यशाली रहा होगा क्योंकि भगवन्नाम का जप करनेवाले, परम संतोषी एवं उदार सेन नाई उसकी सेवा करते थे । वे भगवद्भक्त थे । उनके मन में मंत्रजाप निरंतर चलता ही रहता था । संतमण्डली ने सेन नाई की प्रशंसा सुनी तो एक दिन उनके घर की ओर चल पड़ी । सेन नाई राजा साहब के यहाँ हजामत बनाने को जा रहे थे ।

दैवयोग से मंडली ने सेन नाई से ही पूछा :

''भैया ! सेन नाई को जानते हो ?''

सेन नाई : ''क्या काम था ?''

संत : ''वह भक्त आदमी है । हम भक्त के घर जायेंगे । कुछ खायेंगे-पियेंगे और हरिगुण गायेंगे । क्या तुमने सेन नाई का नाम नहीं सुना है ?''

सेन नाई : ''दास आपके साथ ही चलता है ।''

संतों को छोड़कर वे राजा के पास कैसे जाते ? सेन नाई संत-मण्डली को घर ले आये । घर में उनके भोजन की व्यवस्था की । सीधा-सामान आदि ले आये । संतों ने स्नानादि करके भगवान का पूजन किया एवं कीर्तन करने लगे । सेन नाई भी उसमें सम्मिलित हो गये ।

तन की सुधि न जिनको, जन की कहाँ से प्यारें...

सेन नाई हरि कीर्तन में तल्लीन हो गये । हरि ने देखा कि मेरा भक्त तो यहाँ कीर्तन में बैठ गया है । हरि ने करुणा-वरुणावश सेन नाई का रूप लिया और पहुँच गये राजा वीरसिंह के पास ।

सेन नाई बने हरि ने राजा की मालिश की, हजामत की । राजा वीरसिंह को उनके करस्पर्श से जैसा सुख मिला वैसा पहले कभी नहीं मिला था । राजा बोल पड़े :

''आज तो तेरे हाथ में कुछ जादू लगता है ।''

''अन्नदाता ! बस ऐसी ही लीला है ।'' कहकर हरि तो चल दिये ।

इधर संत मण्डली भी चली गयी । तब सेन नाई को याद आया कि : 'राजा की सेवा में जाना है । वीरसिंह स्नान किये बिना कैसे रहे होंगे ? आज तो राजा नाराज हो जायेंगे । कोई दण्ड मिलेगा या तो सिपाही जेल में ले जायेंगे । चलो, राजा के पास जाकर क्षमा माँग लूँ ।'

हजामत के सामान की पेटी लेकर दौड़ते-दौड़ते सेन नाई राजमहल में आये । द्वारपाल ने कहा :

''अरे, सेनजी ! क्या बात है ? फिर से आ गये ? कंघी भूल गये कि आइना ?''

सेन नाई : ''मजाक छोड़ो । देर हो गयी है । क्यों दिल्लगी करते हो ?''

ऐसा कहकर सेन नाई वीरसिंह के पास पहुँच गये । देखा, तो राजा बड़ी मस्ती में हैं ।

वीरसिंह : ''सेन जी ! क्या बात है ? वापस क्यों आये हो ? अभी थोड़ी देर पहले तो गये थे, कुछ भूल गये हो क्या ?''

सेन नाई : ''महाराज ! आप भी मजाक कर रहे हैं क्या ?''

राजा : ''मजाक ! सेन ! तू पागल तो नहीं हुआ है ? देख ये दाढ़ी तूने बनायी, तूने ही तो नहलाया, कपड़े पहनाये । अभी तो दोपहर हो गयी है, तू फिर से आया है, क्या हुआ ?''

सेन नाई टकटकी लगाकर देखने लगा कि : 'राजा की दाढ़ी बनी हुई है । स्नान करके बैठे हैं ।' फिर बोला :

''राजा साहब ! क्या मैं आपके पास आया था ?''

राजा : ''हाँ, तू ही तो था लेकिन तेरे हाथ आज बड़े कोमल लग रहे थे। आज बड़ा आनंद आ रहा है। दिल में खुशी और प्रेम उभर रहा है। तुम सचमुच भगवान के भक्त हो। भगवान के भक्तों का स्पर्श कितना प्रभावशाली व सुखदायी होता है, इसका पता तो आज ही चला।''

सेन नाई समझ गये कि : 'मेरी प्रसन्नता और संतोष के लिए भगवान को मेरी अनुपस्थिति में नाई का रूप धारण करना पड़ा। वे अपने-आपको धिक्कारने लगे कि एक तुच्छ-सी सेवापूर्ति के लिए, मेरे कारण विश्वनियंता को, मेरे प्रेमास्पद को खुद आना पड़ा! मेरे प्रभु को इतना कष्ट उठाना पड़ा! मैं कितना अभागा हूँ ?'

वे बोले : ''राजा साहब ! मैं नही आया था। मैं तो संत मण्डली को देखकर घर वापस गया था। मैं तो अपना काम भूल गया था और साधुओं की सेवा में लग गया था। मैं तो भूल गया लेकिन मेरी लाज रखने के लिए परमात्मा स्वयं नाई का रूप लेकर आये थे।''

'प्रभु !... प्रभु !...' करके सेन नाई तो भावसमाधि में खो गये। राजा वीरसिंह का भी हृदय पिघल गया। अब सेन नाई तुच्छ सेन नाई नहीं थे और वीरसिंह अहंकारी वीरसिंह नहीं था। दोनों के हृदयों में प्रभु-प्रेम की उस दाता की दया माधुर्य की मंगलमयी सुख-शांति दात्री, करुणा-वरुणालय की रसमयी, सुखमयी, प्रेममयी, माधुर्यमयी... उसके नाम कितने हैं कैसे कहें ? वह धारा हृदय में उभारी धरापति ने। दोनों एक-दूसरे के गले लगे और वीरसिंह ने सेन नाई के पैर छुए और बोला :

''राजपरिवार जन्म-जन्म तक आपका और आपके वंशजों का आभारी रहेगा। भगवान ने आपकी ही प्रसन्नता के लिए मंगलमय दर्शन देकर हमारे असंख्य पाप-तापों का अंत किया है। सेन! अब से आप यह कष्ट नहीं सहना। अब से आप भजन करना, संतों की सेवा करना और मेरा यह तुच्छ धन मेरे प्रभु के काम में लग जाये ऐसी मुझ पर मेहरबानी किया करना। कुछ सेवा का अवसर हो तो मुझे बता दिया करना।''

भक्त सेन नाई उसके बाद वीरसिंह की सेवा में नहीं गये। थे तो नाई लेकिन उस परमात्मा के प्रेम में अमर हो गये और वीरसिंह भी ऐसे भक्त का संग पाकर धनभागी हो गया...

कैसा है वह करुणा-वरुणालय ! अपने भक्त की लाज रखने के लिए उसको नाई का रूप लेने में भी कोई संकोच नहीं होता ! अद्भुत है वह सर्वात्मा और धन्य है उसके प्रेम में सराबोर रहकर संत-सेवा करनेवाले सेन नाई !

*

मित्रता भगवान के नाते थी !

जयदेव नामक एक साधक प्रत्येक कार्य को परमात्मा की ही कृपा मानता था। अपनी युवावस्था को भोग-विलास में खर्च न करके उसने परमात्मा के ध्यान-भजन में ही बिताया।

समय पाकर वह वृद्ध हुआ और दैवयोग से धन्धे में उसे कोई घाटा पड़ा। इसे भी परमात्मा की कृपा समझकर वह निवृत्त जीवन बिताने लगा। उसके पुत्र अभी विकसित होने की उम्र के थे। किसी सेठ के पुत्र में दया का भाव था। उसने सोचा कि : 'जयदेवजी का जीवन अब बड़ी निर्धनता में बीत रहा है। चलो, उन्हें कुछ सहायता कर दूँ।'

उसने अपने नौकर के हाथ २००० अशर्फियाँ एक थैली में डालकर जयदेव के पास भेजीं। नौकर ने जाकर जयदेवजी से कहा :

''सेठजी एवं आप आपस में मित्र थे। सेठ के पुत्र आपको अपना चाचा मानते हैं। उन्होंने मुझे आदेश दिया है कि यह थैली देकर ही आना। अब आप ये अशर्फियाँ स्वीकार करने की कृपा करें।''

उस समय जयदेव अपने परमात्म-भाव में बैठे हुए थे। बाद में जब वे उठे, तब अपने बेटे को बुलाकर उन्होंने कहा : ''जाओ, अशर्फियों की यह थैली सेठ के पुत्र को वापस दे आओ।''

पुत्र : ''पिताजी ! आपके पास दिल है कि नहीं ? हम लोग अभी गरीबी में गुजर-बसर कर रहे हैं। हमारे पास अभी पढ़ाई-लिखाई का साधन नहीं है, वस्त्रादि की सुविधा नहीं है और सेठ के पुत्र ने

२००० अशर्फियाँ भेज दी हैं तो फिर अपने लिए न सही, हमारे लिए तो रख लें। हम आपके पुत्र हैं, अपने परिवार का तो ख्याल करें।''

जयदेव : ''बेटा ! हमारी मित्रता पैसे के कारण नहीं प्रभु के कारण थी, परमात्मा के कारण थी। क्या केवल २००० अशर्फियों के कारण उस परमात्म-संबंध पर बट्टा लगा दूँ ? तुम भले रूखा-सूखा खा लेना, सीधा-सादा पहन लेना, जैसे-तैसे जी लेना लेकिन मेरे परमात्म-संबंध पर, मेरी परमात्म-प्रीति पर बट्टा न लगे, इसका ख्याल रखना। मेरी भक्ति का उपयोग यह थोड़े-ही है कि मेरे कुटुम्बी ऐश करते रहें और मैं उनको दिलाता रहूँ। मेरी भक्ति कुटुम्बियों के ऐश-आराम के लिए नहीं है, मेरी भक्ति पुत्रों को आलसी-विलासी बनाने के लिए नहीं है, मेरी भक्ति तो बस, मेरे मालिक के लिए है।''

जयदेवजी के हृदय की गहराई से निकली हुई वाणी से पुत्र का हृदय बदल गया। उसने २००० अशर्फियाँ ले जाकर सेठ के पुत्र को देते हुए कहा :

''मेरे पिताजी की आपके पिता से मित्रता जरूर थी, पर भगवान के नाते थी, सत्संग के नाते मित्रता थी। लेन-देन के नाते वे मित्र नहीं हुए थे। अतः ये अशर्फियाँ आपको लौटाने आया हूँ।''

सेठ के पुत्र पर इस बात का गहरा प्रभाव पड़ा। पहले तो उसने नौकर के हाथ अशर्फियाँ भेजी थीं, अब २००० के बदले ५००० अशर्फियाँ स्वयं लेकर आया एवं जयदेवजी के चरणों में प्रणाम करते हुए कहा :

''चाचाजी ! कृपा करें ! यह भेंट स्वीकार करें एवं आपके पास जो अशर्फियाँ हैं, जो भक्ति है, जो परमात्म-प्रीति है... बदले में मुझे वह दे दें।''

जयदेव : ''बेटे ! अशर्फियों के बदले में भक्ति नहीं बेची जाती, परमात्म-प्रीति नहीं बेची जाती। वह तो ऐसे ही लुटायी जाती है। बेटा ! तुम भी सच्चे हृदय से उनसे प्रार्थना करो तो तुम्हारे हृदय में भी उस परमात्मा की प्रीति, परमात्मा की भक्ति जाग उठेगी।''

*

* संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से *

प्रेमावतार का प्रागट्य-दिवस : जन्माष्टमी

[श्रीकृष्ण जन्माष्टमी : १२ अगस्त २००१]

चित्त की विश्रांति से सामर्थ्य का प्रागट्य होता है। सामर्थ्य क्या है ? बिना व्यक्ति, बिना वस्तु के भी सुखी रहना- ये बड़ा सामर्थ्य है। अपना हृदय वस्तुओं के बिना, व्यक्तियों के बिना परम सुख का अनुभव करे- यह स्वतंत्र सुख माधुर्य बढ़ानेवाला है।

श्रीकृष्ण के जीवन में सामर्थ्य है, माधुर्य है, प्रेम है। जितना सामर्थ्य उतना ही अधिक माधुर्य, उतना ही अधिक शुद्ध प्रेम है श्रीकृष्ण के पास।

पैसों से प्रेम करोगे तो लोभी बनायेगा, पद से प्रेम करोगे तो अहंकारी बनायेगा, परिवार से प्रेम करोगे तो मोही बनायेगा लेकिन प्राणिमात्र के प्रति समभाववाला प्रेम रहेगा, शुद्ध प्रेम रहेगा तो वह परमात्मा का दीदार करवा देगा।

प्रेम सब कर सकते हैं। शांत सब रह सकते हैं और माधुर्य सब पा सकते हैं। जितना शांत रहने का अभ्यास होगा उतना ही माधुर्य विकसित होता है, जितना माधुर्य विकसित है उतना ही शुद्ध प्रेम विकसित होता है और ऐसे प्रेमीभक्त को किसी चीज़ की कमी नहीं रहती। प्रेमी सबका हो जाता है, सब प्रेमी के हो जाते हैं। पशु भी प्रेम से वश हो जाते हैं, मनुष्य भी प्रेम से वश हो जाते हैं और भगवान भी प्रेम से वश हो जाते हैं !

श्रीकृष्ण जेल में जन्मे हैं। वे आनंदकंद सच्चिदानंद जेल में प्रगटे हैं। आनंद जेल में प्रगट

तो हो सकता है लेकिन आनंद का विस्तार जेल में नहीं हो सकता। जब तक यशोदा के घर नहीं जाता, आनंद प्रेममय नहीं हो पाता। योगी समाधि करते हैं एकांत में, जेल जैसी जगह में आनंद प्रगट तो होता है लेकिन समाधि टूटी तो आनंद गया। आनंद प्रेम से बढ़ता है, माधुर्य से विकसित होता है।

प्रेम किसीका अहित नहीं करता। जो स्तनों में जहर लगाकर आयी उस पूतना को भी श्रीकृष्ण ने स्वधाम पहुँचा दिया। पूतना कौन थी ? पूतना कोई साधारण नहीं थी। पूर्वकाल में राजा बलि की बेटी थी, राजकन्या थी। भगवान वामन आये तो उनका रूप सौंदर्य देखकर उस राजकन्या को हुआ कि : 'मेरी सगाई हो गयी है। मुझे ऐसा बेटा हो तो मैं गले लगाऊँ और उसको दूध पिलाऊँ।' लेकिन जब नन्हा-मुन्हा वामन विराट हो गया और बलिराजा का सर्वस्व छीन लिया तो उसने सोचा कि : 'मैं इसको दूध पिलाऊँ ? इसको तो जहर पिलाऊँ, जहर।'

वही राजकन्या पूतना हुई। दूध भी पिलाया और जहर भी। उसे भी भगवान ने अपना स्वधाम दे दिया। प्रेमास्पद जो ठहरे... !

प्रेम कभी फरियाद नहीं करता, उलाहना देता है। गोपियाँ उलाहना देती हैं यशोदा को :

''यशोदा ! हम तुम्हारा गाँव छोड़कर जा रही हैं।''

''क्यों ?''

''तुम्हारा कन्हैया हमारी मटकी फोड़ देता है।''

''एक के बदले दस-दस मटकियाँ ले लो।''

''ऊँ हूँ... तुम्हारा ही लाला है क्या ! हमारा नहीं है क्या ? मटकी फोड़ी तो क्या हुआ ?''

''अभी तो फरियाद कर रही थी, गाँव छोड़ने की बात कर रही थी ?''

''वह तो ऐसे ही कर दी। तुम्हारा लाला कहाँ है ? दिखा दो तो जरा।''

उलाहना देने के बहाने भी दीदार करने आयी हैं, गोपियाँ ! प्रेम में परेशानी नहीं, झंझट नहीं केवल त्याग होता है, सेवा होती है। प्रेम की दुनिया ही निराली है।

प्रेम न खेतों ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा चहौं प्रजा चहौं शीश दिये ले जाय॥

प्रेम खेत में पैदा नहीं होता, बाजार में भी नहीं मिलता। जो प्रेम चाहे वह अपना शीश, अपना अभिमान दे दे ईश्वर के चरणों में, गुरुचरणों में...

एक बार यशोदा मैया मटकी फोड़नेवाले लाला के पीछे पड़ी कि : ''कभी प्रभावती, कभी कोई, कभी कोई... रोज-रोज तेरी फरियाद सुनकर मैं तो थक गयी। तू खड़ा रह।''

यशोदा ने उठाई लकड़ी। यशोदा के हाथ में लकड़ी देखकर श्रीकृष्ण भागे। श्रीकृष्ण आगे, यशोदा पीछे... श्रीकृष्ण ऐसी चाल से चलते कि माँ को तकलीफ भी न हो और माँ वापस भी न जाये ! थोड़ा दौड़ते, थोड़ा रुकते। ऐसा करते-करते देखा कि : 'अब माँ थक गयी है और माँ हार जाये तो उसको आनंद नहीं आयेगा।' प्रेमदाता श्रीकृष्ण ने अपने को पकड़वा दिया। पकड़वा लिया तो माँ रस्सी लायी बाँधने के लिए। रस्सी है माया, मायातीत श्रीकृष्ण को कैसे बाँधे ? हर बार रस्सी छोटी पड़ जाये। थोड़ी देर बाद देखा कि : 'माँ कहीं निराश न हो जाये तो प्रेम के वशीभूत मायातीत भी बँध गये।' माँ बाँधकर चली गयी और इधर ओखली को घसीटते-घसीटते ये तो पहुँचे यमलार्जुन (नल-कूबर) का उद्धार करने... नल-कूबर को श्राप से मुक्ति दिलाने... धड़ाकधूम वृक्ष गिरे, नल-कूबर प्रणाम करके चले गये... अपने को बँधवाया भी तो किसी पर करुणा करने हेतु बाकी, उस मायातीत को कौन बाँधे ?

एक बार किसी गोपी ने कहा : ''देख, तू ऐसा मत कर। माँ ने ओखली से बाँधा तो रस्सी छोटी पड़ गयी लेकिन मेरी रस्सी देख। चार-चार गायें बँध सकें इतनी बड़ी रस्सी है। तुझे तो ऐसा बाँधूँगी कि तू भी याद रखेगा, हाँ।''

कृष्ण : ''अच्छा बाँध।''

वह गोपी 'कोमल-कोमल हाथों में रस्सी बाँधना है, यह सोचकर धीरे-धीरे बाँधने लगी।

कृष्ण : ''तुझे रस्सी बाँधना आता ही नहीं है।''

गोपी : ''मेरे बाप ! कैसे रस्सी बाँधी जाती है।''

कृष्ण : ''ला, मैं तुझे बताता हूँ।'' ऐसा करके गोपी के दोनों हाथ पीछे करके रस्सी से बाँधकर फिर खंभे से बाँध दिया और दूर जाकर बोले :

''ले ले, बाँधनेवाली खुद बँध गयी... तू मुझे बाँधने आयी थी लेकिन तू ही बँध गयी।

ऐसे ही माया जीव को बाँधने आये उसकी जगह जीव ही माया को बाँध दे मैं यही सिखाने आया हूँ।

कैसा रहा होगा वह नटखटिया ! कैसा रहा होगा उसका दिव्य प्रेम ! अपनी एक-एक लीला से जीव की उन्नति का संदेश देता है वह प्रेमस्वरूप परमात्मा !

आनंद प्रगट तो हो जाता है जेल में लेकिन बढ़ता है यशोदा के यहाँ, प्रेम से।

यशोदा विश्रांति करती है तो शक्ति आती है ऐसे ही चित्त की विश्रांति सामर्थ्य को जन्म देती है लेकिन शक्ति जब कंस के यहाँ जाती है तो हाथ में से छटक जाती है, ऐसे ही सामर्थ्य अहंकारी के पास आता है तो छटक जाता है। जैसे, शक्ति अहंकार रहित के पास टिकती है ऐसे ही प्रेम भी निरभिमानी के पास ही टिकता है।

प्रेम में कोई चाह नहीं होती। एक बार देवताओं के राजा इंद्र प्रसन्न हो गये एवं श्रीकृष्ण से बोले : ''कुछ माँग लो।''

श्रीकृष्ण : ''अगर आप कुछ देना ही चाहते हैं तो यही दीजिये कि मेरा अर्जुन के प्रति प्रेम बढ़ता रहे।''

अर्जुन अहोभाव से भर गया कि : 'मेरे लिए मेरे स्वामी ने क्या माँगा ?'

प्रेम में अपनत्व होता है, निःस्वार्थता होती है, विश्वास होता है, विनम्रता होती है और त्याग होता है। सच पूछो तो प्रेम ही परमात्मा है और ऐसे परम प्रेमस्वरूप, परम प्रेमास्पद श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव ही है- जन्माष्टमी।

आप सबके जीवन में भी उस परम प्रेमास्पद के लिए दिव्य प्रेम निरंतर बढ़ता रहे। आप उसी में खोये रहें उसी के होते रहें ॐ माधुर्य... ॐ शांति... मधुमय माधुर्यदाता, प्रेमावतार, नित्य नवीन रस, नवीन सूझबूझ देनेवाले। गीता जो प्रेमावतार का हृदय है - **गीता मे हृदयं पार्थ।** ''गीता मेरा हृदय है।''

प्रेमावतार श्रीकृष्ण के हृदय को समझने के लिए गीता ही तो है आप-हम प्रतिदिन गीता ज्ञान में परमेश्वरीय प्रेम में खोते जायँ, उसमय होते जायँ... खोते जायँ... होते जायँ।

*

गणपतिजी का श्रीविग्रह : मुखिया का आदर्श

[गणेश चतुर्थी : २२ अगस्त २००१]

गणेश चतुर्थी... एक पावन पर्व... विघ्नहर्त्ता प्रभु गणेश के पूजन-आराधन का पर्व...

गणों का जो स्वामी है- उसे 'गणपति' कहते हैं।

कथा आती है कि : माँ पार्वती ने अपने योगबल से एक बालक प्रगट किया और उसे आज्ञा दी कि : 'मेरी आज्ञा के बिना कोई भी भीतर प्रवेश न करे।'

इतने में शिवजी आये, तब उस बालक ने प्रवेश के लिए मना किया। शिवजी और वह बालक दोनों भिड़ पड़े और शिवजी ने त्रिशूल से बालक का शिरोच्छेद कर दिया। बाद में माँ पार्वती से सारी हकीकत जानकर उन्होंने अपने गणों से कहा : ''जाओ, जिसका भी मस्तक मिले ले आओ।''

गण ले आये हाथी का मस्तक और शिवजी ने उसे बालक के सिर पर स्थापित कर दिया और उसे जीवित कर दिया- वही बालक भगवान 'गणपति' कहलाये।

यहाँ पर एक शंका हो सकती है कि बालक के धड़ पर हाथी का मस्तक कैसे स्थित हुआ होगा ?

इसका समाधान यह है कि देवताओं की आकृति भले मानुषी हो लेकिन उनकी काया मानुषी काया से विशाल होती है।

अभी रूस के कुछ वैज्ञानिकों ने प्रयोग किया कि एक कुत्ते के सिर को काटकर, दो कुत्तों का सिर लगा दिया। वह कुत्ता दोनों मुखों से खाता है और

जीवित है। रूस के वैज्ञानिक आज ऑपरेशन द्वारा कुत्ते के ऊपर दूसरे कुत्ते का सिर लगाकर प्रयोग कर सकते हैं। इससे भी लाखों-करोड़ों वर्ष पहले शिवजी के संकल्प द्वारा बालक के धड़ पर गज का मस्तक स्थित हो जाये- इसमें शंका नहीं करनी चाहिए। आज का विज्ञान शल्य क्रिया द्वारा कुत्ते के एक सिर की जगह दो सिर लगाने में सफल हो सकता है। शिवजी के संकल्प, योग व सामर्थ्य समाज को आश्चर्य, कुतूहल और जिज्ञासा जगाकर सद्प्रेरणा देना चाहते हैं। इस समय भी कुछ ऐसे महापुरुष हैं जो चाँदी की अंगूठी हाथ में लेकर स्वर्णमयी बना देते हैं। लोहे के कड़े को अपने यौगिक सामर्थ्य से स्वर्ण बना दिया। उनके प्रति ईर्ष्या रखनेवाले भले उन्हें जादूगर कह दें। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस जैसे महापुरुष के इससे भी अद्भुत यौगिक प्रयोग पं. गोपीनाथ कविराज ने देखे।

छोटी मति-गति के लोग श्री गणपतिजी के लिए कुछ भी कह दें और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अश्रद्धा पैदा कर दें परन्तु सच्चे, समझदार, अष्टसिद्धि व नवनिधि के स्वामी, इन्द्रियजित, व्यासजी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर १८००० श्लोकों वाली श्रीमद्भागवत के लेखक लोक मांगल्य के मूर्त स्वरूप श्री गणपतिजी के विषय में विष्णु भगवान ने बोला है :

न पार्वत्याः परा साध्वी न गणेशात्परो वशी...

'पार्वतीजी से बढ़कर कोई साध्वी नहीं और गणेशजी से बढ़कर कोई संयमी नहीं।'

ब्रह्मवैवर्त्त गण. खं. ४४-७५

भगवान तो उपदेश के द्वारा हमारा कल्याण करते हैं जबकि गणपति भगवान तो अपने श्रीविग्रह से भी हमें प्रेरणा देते हैं और हमारा कल्याण करते हैं।

हाथी की सूँड लम्बी होती है- जिसका तात्पर्य है कि समाज में जो बड़ा हो या कुटुम्बादि में जो बड़ा हो उसे दूर की गंध आनी चाहिए।

हाथी की आँखें छोटी-छोटी होती हैं किन्तु सुई जैसी बारीक चीज़ भी उठा लेता है, वैसे ही समाज आदि के आगेवान् की, मुखिया की सूक्ष्म दृष्टि होनी चाहिए।

हाथी के कान सूपे जैसे होते हैं जो इस बात की ओर इंगित करते हैं कि : 'समाज के 'गणपति' अगुआ के कान भी सूपे की तरह होने चाहिए जो बातें तो भले कई सुने किन्तु उसमें से सार-सार उसी तरह ग्रहण कर ले, जिस तरह सूपे से धान-धान बच जाती है और कचरा-कचरा उड़ जाता है।'

गणपतिजी के दो दाँत हैं- एक बड़ा और एक छोटा। बड़ा दाँत दृढ़ श्रद्धा का और छोटा दाँत विवेक का प्रतीक है। अगर मनुष्य के पास दृढ़ श्रद्धा हो और विवेक की थोड़ी कमी हो, तब भी श्रद्धाके बल से वह तर जाता है।

गणपति के हाथ में मोदक और दण्ड है अर्थात् जो साधन-भजन करके उन्नत होते हैं, उन्हें वे मधुर प्रसाद देते हैं और जो वक्रदृष्टि रखते हैं, उन्हें वक्रदृष्टि दिखाकर दण्ड से उनका अनुशासन करके, उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हैं।

गणपतिजी का पेट बड़ा है- वे लम्बोदर हैं। उनका बड़ा पेट यह प्रेरणा देता है कि : 'जो कुटुम्ब-समाज का बड़ा है उसका पेट बड़ा होना चाहिए ताकि इस-उसकी बात सुन तो ले किन्तु जहाँ-तहाँ उसे कहे नहीं। अपने पेट में ही उसे समा ले।'

गणेशजी के पैर छोटे हैं जो इस बात की ओर संकेत करते हैं कि 'धीरा सो गंभीरा, उतावला सो बावला।' कोई भी कार्य उतावलेपन से नहीं, बल्कि सोच-विचारकर करें, ताकि विफल न हों।

गणपतिजी का वाहन है- चूहा। इतने बड़े गणपतिजी और वाहन चूहा ! हाँ, माता पार्वती का सिंह जिस किसी से हार नहीं सकता, शिवजी का बैल नंदी भी जिस-किसीके घर नहीं जा सकता, लेकिन चूहा तो हर जगह घुसकर भेद ला सकता है इस तरह क्षुद्र-से-क्षुद्र प्राणी चूहे तक को भगवान गणपति ने सेवा सौंपी है। छोटे-से-छोटे व्यक्ति से भी बड़े-बड़े काम हो सकते हैं क्योंकि छोटा व्यक्ति कहीं भी जाकर वहाँ की गंध ले आ सकता है।

इस प्रकार गणपतिजी का श्रीविग्रह समाज के, कुटुम्ब के गणपति अर्थात् मुखिया के लिए प्रेरणा देता है कि : 'जो भी कुटुम्ब का, समाज का अगुआ है, नेता है उसे गणपति की तरह लम्बोदर बनना

चाहिए, उसकी दृष्टि सूक्ष्म होनी चाहिए, कान विशाल होने चाहिए और गणपति की नाई वह अपनी इन्द्रियों पर (गणों पर) अनुशासन कर सके।'

कोई भी शुभ कर्म हो- चाहे विवाह हो या गृह-प्रवेश, चाहे विद्यारंभ हो, चाहे भूमिपूजन, चाहे शिव की पूजा हो चाहे नारायण की पूजा- किन्तु सबसे पहले गणेशजी का पूजन जरूरी है।

गणेशचतुर्थी के दिन भगवान श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से भगवान गणपति का व्रत-उपवास करवाया था ताकि युद्ध में सफलता मिल सके।

गणेश चतुर्थी के दिन भगवान गणपति का पूजन तो विशेष फलदायी है, किन्तु उस दिन चाँद का दर्शन कलंक लगानेवाला होता है, क्यों ?

पुराणों में कथा आती है कि :

एक बार गणपतिजी कहीं जा रहे थे तो उनके लम्बोदर को देखकर चाँद के अधिष्ठाता चंद्रदेव हँस पड़े। उन्हें हँसते देखकर गणेशजी ने श्राप दे दिया कि : 'दिखते तो सुंदर हो, किन्तु आज के दिन तुम मेरे पर कलंक लगाते हो। अतः आज के दिन जो तुम्हारा दर्शन करेगा उसे कलंक लग जायेगा।'

यह सच्चाई आज भी प्रत्यक्ष दिखती है। विश्वास न हो तो गणेश-चतुर्थी के चंद्रमा का दर्शन करके देख लेना। भगवान श्रीकृष्ण तक को गणेश-चतुर्थी के दिन चंद्रमा के दर्शन करने पर 'स्यमंतकमणि की चोरी' का कलंक सहना पड़ा था। बलरामजी को भी श्रीकृष्ण पर संदेह हो गया था। सर्वेश्वर, लोकेश्वर श्रीकृष्ण पर भी जब चौथ के चाँद-दर्शन करने पर कलंक लग सकता है तो साधारण मानव की तो बात ही क्या ?

किन्तु यदि भूल से भी चतुर्थी का चंद्रमा दिख जाये तो श्रीमद्भागवत् में 'श्रीकृष्ण की स्यमंतकमणि चोरी के कलंकवाली जो कथा आयी है उसका आदरपूर्वक श्रवण अथवा पठन करने से एवं तृतीया तथा पंचमी का चंद्रमा देखने से उस कलंक का प्रभाव दूर होता है। जहाँ तक हो सके भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी दिनांक : २२-८-२००१ का चंद्रमा न दिखे, इसकी सावधानी रखें।

*

परम पूज्य ब्रह्मनिष्ठ स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज की

अमृतवाणी

जिज्ञासु : ''स्वामीजी ! आजकल स्वतंत्रता के नाम पर बहुत कुछ नहीं होने जैसा भी हो रहा है। यदि किसीको कुछ समझायें तो वह यह कह देता है कि हम स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं। अतः हम अपनी इच्छा के अनुसार जी सकते हैं।''

स्वामीजी : ''(क्रोधपूर्ण शब्दों में) ऐसे मूर्ख लोग स्वतंत्रता का अर्थ ही नहीं जानते। स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छंदता नहीं है। हमारा देश १५ अगस्त १९४७ को स्वतंत्र हुआ, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें जैसा चाहें वैसा करने का अधिकार मिल गया है। सच्ची स्वतंत्रता तो यह है कि हम अपने मन-इन्द्रियों की गुलामी से छूट जायें। विषय-वासनाओं के वश में रहकर जैसा मन में आया वैसा कर लिया यह स्वतंत्रता नहीं बल्कि गुलामी है। मनमानी तो पशु भी कर लेता है फिर मनुष्यता कहाँ रही ?

भले ही कोई सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में कर ले, सभी शत्रुओं को मार डाले परन्तु यदि वह अपने मन को वश नहीं कर सका, अपने भीतर छिपे विकाररूपी शत्रुओं को नहीं मार पाया तो उसकी दुर्गति होनी निश्चित है।

एक दिन तुम अपने कमरे में गये और अन्दर से ताला लगाकर चाबी अपने पास रख ली। दूसरे दिन तुम जैसे ही अपने कमरे में घुसे किसीने बाहर से ताला लगा दिया और चाबी लेकर भाग गया।

अब पहले दिन तुम कमरे में बंद रहकर भी स्वतंत्र थे क्योंकि कमरे से बाहर निकलना तुम्हारे हाथ में था। दूसरे दिन वही कमरा तुम्हारे लिए जेलखाना बन गया क्योंकि चाबी दूसरे के हाथ में है।

इसी प्रकार जब तुम अपने मन पर संयम रखते हो, माता-पिता, गुरुजनों एवं सत्शास्त्रों की आज्ञा में चलकर मन को वश में रखते हुए कार्य करते हो तब तुम स्वतंत्र हो। इसके विपरीत यदि मन के कहे अनुसार चलते रहे तो तुम मन के गुलाम हुए। भले ही अपने को स्वतंत्र कहो परन्तु हो महागुलाम...

विदेशों में बड़ी आजादी है। उठने-बैठने, खाने-पीने अथवा कोई भी व्यवहार करने की खुली छूट है। माँ-बाप, पुत्र-पुत्री सब स्वतंत्र हैं। किसीका किसी पर भी कोई नियंत्रण नहीं है, किन्तु ऐसी उच्छृंखलता से वहाँ के लोगों का कैसा विनाश हो रहा है, यह भी तो जरा सोचो। मान-मर्यादा, धर्म, चरित्र सब नष्ट हो रहे हैं वे मनुष्य होकर पशुओं से भी अधम हो चुके हैं, क्या तुम इसे आजादी कहते हो ? कदापि नहीं, यह आजादी नहीं महाविनाश है।

चौरासी लाख शरीरों में कष्ट भोगने के बाद यह मानव शरीर मिलता है परन्तु मूढ़मतिवाले लोग इस दुर्लभ शरीर में भी पशुओं जैसे ही कर्म करते हैं। ऐसे लोगों को आगे चलकर बहुत रोना पड़ता है। तुलसीदासजी कहते हैं :

बड़े भाग मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्ह गावा॥
साधनधाम मोक्षकर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुःख पावइ, सिर धुनि-धुनि पछताइ॥
कालहिं कर्महिं ईस्वरहिं, मिथ्या दोष लगाइ॥

अतः मेरे भैया ! स्वतंत्रता का अर्थ उच्छृंखलता नहीं है। शहीदों ने खून की होली खेलकर आप लोगों को इसलिए आजादी दिलायी है ताकि आप बिना किसी कष्ट के अपना तथा समाज एवं देश का कल्याण कर सको। **स्वतंत्रता का सदुपयोग करो तभी तुम तथा तुम्हारा देश स्वतंत्र रह पायेगा अन्यथा मनमुखता के कारण अपने ओज-तेज को नष्ट करनेवालों को कोई भी अपना गुलाम बना सकता है।''**

*

सबसे बड़ा आश्रय

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

मैं अपने गुरुदेव के नाम आये हुए साधक-भक्तों के पत्र पढ़कर पूज्य गुरुदेव को सुनाता एवं उनके बताये अनुसार जवाब लिखने की सेवा करता था। साधकों के पत्र पढ़ने से मुझे एक फायदा होता था - कौन-सा साधक साधना की किस भूमिका एवं ऊँचाई पर है एवं पूज्य गुरुदेव साधक के प्रश्न अथवा उलझन के अनुरूप जो योग्य मार्गदर्शन लिखवाते उसका लाभ होता।

एक बार एक भक्त का पत्र गुरुदेव के नाम से आया। मैंने गुरुदेव के समक्ष पढ़ा। पत्र सुनकर पूज्य गुरुदेव ने कहा : ''उसे लिख दो कि आप चिंता न करें। भगवान सब मंगल करेंगे। आपने अपने स्वार्थ के लिए तो नहीं किया तो जाओ, आपको कोई सजा-वजा नहीं होगी।''

मैं इस सेवा कार्य में अत्यंत नया था। मैंने पूछ लिया : ''गुरुदेव ! अभी तो उसका 'केस' भी शुरु नहीं हुआ है तो सजा की बात कहाँ ?''

गुरुदेव : ''तुझे क्या पता ? तू जवाब लिख दे।''

मेरे मन में हुआ कि अभी तो 'केस' चलेगा और पता नहीं कि कब तक चलेगा... उसके पूर्व ही गुरुदेव ने कह दिया कि 'जाओ, कुछ नहीं होगा, सजा-वजा भी नहीं होगी !'

क्या पता क्यों मुझे उलझन हुई कि 'क्या गुनाह होगा ? कैसी सजा ? किसको पता ?' वगैरह, वगैरह...

यह घटना बनी थी बाँदीपुरी से थोड़ी दूर खैथल

नामक गाँव में। उस गाँव के सिंधियों का प्रमुख था मेवाराम (वे बुजुर्ग हयात हैं)। वहाँ के पुलिस अफसर के साथ एक विवाद में मेवाराम की 'तू-तू, मैं-मैं' हो गयी।

मेवाराम : ''लाँच-रिश्वत के लिए तू हमारे समाज के लोगों को परेशान करता है ! तू अपने आपको क्या समझता है !''

बात आगे बढ़ी तो मेवाराम ने पुलिस अफसर को एक थप्पड़ मार दी। बस, हो गया। समाज की निःस्वार्थ सेवा हेतु मेवाराम की स्थिति आकाश से गिरे खजूर में अटके ! जैसी हो गयी। पुलिस अफसर क्रोध से तमतमा उठा। थप्पड़ का बदला लेने के लिए उसने मेवाराम के विरोध में पूरा 'केस' मजबूत बना दिया।

प्रमुख मेवाराम को पुलिस ने बराबर झपेटे में ले लिया अतः उसने घबराकर गुरुजी को पत्र लिखकर वस्तुस्थिति बतायी : 'मैंने ऐसा कुछ नहीं किया। मैं सत्य पर अडिग था और ऐसा हो गया। मैंने उसे किसी भी प्रकार की लाँच-रिश्वत न दी थप्पड़ जरुर मारा, इसलिए...।'

पूज्य गुरुदेव थोड़ीदेर के लिए शांत होकर वृत्तियों का जो साक्षी है साक्षी भाव में स्थिर हो गये। जब तुम वृत्तियों के, दूसरों की घटनाओं के साक्षी हो जाते हो, तब जो होनेवाला होता है उसका प्रकाश भी तुम्हारे हृदय में हो जाता है। मेरे गुरुदेव ने उसी में डुबकी लगायी एवं उसे छूकर जो विचार आया, वही मुझे लिखवाया। हालाँकि उस वक्त मुझमें इस बात का ज्ञान नहीं था।

इधर बाँदीपुरी में मेवाराम के सामने केस चला। पेशी पर पेशी होती गयीं... आखिर न्यायाधीश ने मुखी मेवाराम को चेम्बर में बुलाकर पूछा :

''यह क्या हो रहा है ! एक ओर तुम्हारे विरोध में 'केस' मजबूत है। साक्षी एवं प्रमाण सब तुम्हारे विरुद्ध हैं। इसके आधार पर तुम्हें छः महीने जेल की सजा एवं दो हजार रुपया जुर्माना होना चाहिए। मैं इन सब पर विचार करके जब निर्णय लिखने बैठता हूँ तो मेरी कलम ही नहीं चलती और इसलिए मैं पेशी की तारीखें बढ़ाता जाता हूँ।''

पुलिस एवं उसके साथियों ने मेवाराम को फँसाने की सभी युक्तियाँ आजमा लीं लेकिन मेवाराम ने न तो कोई अर्जी की न किसी से कुछ कहा। वह तो पूज्य गुरुदेव को सारी हकीकत सच्चाई से निखालसतापूर्वक, नम्रतापूर्वक बताकर निश्चिंत हो गया था। ऊपर से उसे अपने गुरुदेव की ओर से अभय वचन भी मिल गया था। उसे पूज्य गुरुदेव पर अडिग श्रद्धा थी - **विश्वासो फलदायकः।** हुआ भी ऐसा ही, पूज्य गुरुदेव के प्रति विश्वास का परिणाम यही आया, मेवाराम के वकील का ऐसा कोई तुक्का लग गया कि न्यायाधीश को मेवाराम को निर्दोष छोड़ देने का फैसला लिखना पड़ा।

दादू दीनदयाल के एक शिष्य रज्जब ने कहा है :

रज्जब कूँ अज्जब मिल्या गुरु दादू दातार।
दुःख दरिद्र तबका गया सुख संपत्ति अपार॥

✲

सब वस्तुओं में ब्रह्मदर्शन करने में यदि आप सफल न हो सको तो जिनको आप सबसे अधिक प्रेम करते हो ऐसे, कम-से-कम एक व्यक्ति में ब्रह्म-परमात्मा का दर्शन करने का प्रयास करो। ऐसे किसी तत्त्वज्ञानी महापुरुष की शरण पा लो जिनमें ब्रह्मानन्द छलकता हो। उनका दृष्टिपात होते ही आपमें भी ब्रह्मानन्द का प्रादुर्भाव होने की सम्भावना पनपेगी। जैसे एक्स-रे मशीन की किरण कपड़े, चमड़ी, मांस को चीरकर हड्डियों का फोटो खींच लाती है, वैसे ही ज्ञानी की दृष्टि आपके चित्त में रहनेवाली देहाध्यास की पर्तें चीरकर आपमें ईश्वर को निहारती है। उनकी दृष्टि से चीरी हुई पर्तों को चीरना आपके लिए भी सरल हो जायेगा। आप भी स्वयं में ईश्वर को देख सकेंगे। अतः अपने चित्त पर ज्ञानी महापुरुष की दृष्टि पड़ने दो। पलकें गिराये बिना, अहोभाव से, शांत भाव से उनके समक्ष बैठो तो आपके चित्त पर उनकी दृष्टि पड़ेगी।

(आश्रम की पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

मुक्ताबाई का सर्वत्र विठ्ठल दर्शन

⁕ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ⁕

श्री निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर एवं सोपानदेव की छोटी बहन थी मुक्ताबाई। जन्म से ही चारों सिद्ध योगी, परम विरक्त एवं सच्चे भगवद्भक्त थे। बड़े भाई निवृत्तिनाथ ही सबके गुरु थे।

नन्हीं-सी मुक्ता कहती : ''विठ्ठल ही मेरे माता-पिता हैं। शरीर के माता-पिता तो मर जाते हैं लेकिन हमारे सच्चे माता-पिता हमारे परमात्मा तो सदा साथ रहते हैं।''

उसने सत्संग में सुन रखा था कि : 'विठ्ठल केवल मंदिर में ही नहीं, विठ्ठल तो सबका आत्मा बना बैठा है। सारे शरीरों में उसीकी चेतना है। वह कीड़ी में छोटा और हाथी में बड़ा लगता है। विद्वानों की विद्या की गहराई में उसीकी चेतना है। बलवानों का बल उसी परमेश्वर का है। संतों का संतत्व उसी परमात्मसत्ता से है। जिसकी सत्ता से आँखें देखती हैं, कान सुनते हैं, नासिका श्वास लेती है, जिह्वा स्वाद का अनुभव करती है वही विठ्ठल हैं।'

किसी पुष्प को देखती तो मुक्ताबाई प्रसन्न होकर कह उठती कि 'विठ्ठल बड़े अच्छे हैं।'

एक दिन मुक्ताबाई कह उठी : ''विठ्ठल! तुम कितने गंदे हो। ऐसी गंदगी में रहते हो।''

किसीने पूछा : ''कहाँ है विठ्ठल?''

मुक्ताबाई : ''देखो न, इस गंदी नाली में विठ्ठल कीड़ा बने बैठे हैं।''

मुक्ताबाई की दृष्टि कितनी सात्त्विक हो गयी थी! वह सर्वत्र अपने विठ्ठल के दीदार कर रही थी।

चारों बच्चों को एक संन्यासी के बच्चे मानकर कट्टरवादियों ने उन्हें जाति से बाहर कर दिया था। उनके माता-पिता के साथ तो जुल्म किया ही था, बच्चों को भी जाति से बाहर कर रखा था। अतः कोई इन्हें मदद नहीं करता था। पेट को आहुति देने के लिए वे बच्चे भिक्षा माँगने जाते थे।

दीपावली के दिन वह बारह वर्षीया मुक्ताबाई निवृत्तिनाथ से पूछती है : ''भैया! आज दीपावली है। भिक्षा में आटा, दाल, बेसन, घी सब मिला है। क्या बनाऊँ?''

निवृत्तिनाथ : ''बहन! मेरी तो मर्जी है कि आज मीठे चीले बना ले।''

ज्ञानेश्वर : ''तीखे भी तो अच्छे लगते हैं।''

मुक्ताबाई हर्ष से बोल पड़ी : ''मीठे भी बनाऊँगी और नमकीन भी। आज तो दीपावली है।''

बाहर से तो दरिद्रता दिखती है। समाजवालों ने बहिष्कृत कर रखा है, न धन है, न दौलत, न 'बैंक बैलेन्स' है। न कार है न बँगला। साधारण-सा घर है फिर भी विठ्ठल के भाव में सराबोर हृदय के भीतर का सुख असीम है।

मुक्ताबाई ने अंदर जाकर देखा तो तवा ही नहीं था क्योंकि विसोबा चाटी ने रात्रि में ही सारे बर्तन चोरी करवा दिये थे। बिना तवे के चीले कैसे बनेंगे? वह जल्दी से निकल पड़ी तवा लाने के लिए।

''भैया! मैं कुम्हार के यहाँ से रोटी सेंकने का तवा ले आती हूँ।''

लेकिन विसोबा चाटी ने सभी कुम्हारों को डाँट कर मना कर दिया था कि 'खबरदार! इसको तवा दिया तो तुमको जाति से बाहर करवा दूँगा।'

घूमते-घामते कुम्हारों के द्वार खटखटाते हुए आखिर उदास होकर वापस लौटी। मज़ाक उड़ाते हुए विसोबा चाटी ने पूछा :

''क्यों? कहाँ गयी थी?''

मुक्ता ने सरलता से उत्तर दे दिया :

''मैं बाहर से तवा लेने गयी थी लेकिन कोई

देता ही नहीं है।''

घर पहुँचते ही ज्ञानेश्वर ने उसकी उदासी का कारण पूछा तो बालिका ने सारा हाल सुना दिया।

ज्ञानेश्वर : ''कोई बात नहीं। तू आटा तो मिला।''

मुक्ताबाई : ''आटा तो मिला मिलाया है।''

ज्ञानेश्वर नंगी पीठ करके बैठ गये। उन योगिराज ने प्राणों का संयम करके पीठ पर अग्नि की भावना की। पीठ तप्त तवे की भाँति लाल हो गयी। ''ले जितने रोटी या चीले सेंकने हों, इस पर सेंक ले।''

मुक्ताबाई स्वयं योगिनी थी। भाइयों की शक्ति को जानती थी। उसने बहुत-से मीठे और नमकीन चीले व रोटियाँ बना लीं। फिर कहा : ''भैया ! अपने तवे को शीतल कर लो।''

ज्ञानेश्वर ने अग्निधारण का उपसंहार कर दिया।

संकल्प बल से तो अभी-भी कुछ लोग चमत्कार करके दिखाते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ने अग्नि-तत्त्व की धारणा करके अग्नि को प्रगट कर दिया था। वे सत्य-संकल्प एवं योग-संपन्न पुरुष थे। जैसे आप स्वप्न में अग्नि, जल आदि सब बना लेते हैं, वैसे ही योगशक्ति-संपन्न पुरुष जाग्रत में जिस तत्त्व की धारणा करें उसे बढ़ा अथवा घटा सकते हैं।

जल-तत्त्व की धारणा सिद्ध हो जाये तो आप यहाँ जल में गोता मारो और हज़ारों मील दूर निकलो। पृथ्वीतत्त्व की धारणा सिद्ध है तो आपको यहाँ गाड़ दें और हज़ारों मील दूर आप प्रगट हो जाओ। ऐसे ही वायुतत्त्व, अग्नितत्त्व आदि की धारणा भी सिद्ध की जा सकती है। कबीर के जीवन में भी ऐसे चमत्कार हुए थे और दूसरे योगियों के जीवन में भी देखे गये, सुने गये।

मेरे गुरुदेव परम पूज्य स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज ने नीम के पेड़ को आज्ञा दी कि : 'तू अपनी जगह पर जा।' तो वह पेड़ चल पड़ा। तबसे 'लीलाराम' में से 'श्री लीलाशाह' के नाम से वे प्रसिद्ध हुए। योग-शक्ति में बड़ा सामर्थ्य होता है। आप ऐसा सामर्थ्य पा लो ऐसा मेरा कहने का आग्रह नहीं है लेकिन थोड़े-से सुख के लिए, क्षणिक सुख के लिए बाहर न भागना पड़े ऐसे स्वाधीन हो जाओ। सच्चे सुख आत्मा-परमात्मा में, सहज भाव में स्थित हो जाओ भले सिद्धियाँ पाने की कुबेर साधना न करो लेकिन सुख-दुःख के झटकों से बचने की सरल साधना तो कर लो।

निवृत्तिनाथ भोजन करते हुए भोजन की प्रशंसा कर रहे थे : ''मुक्ति ने निर्मित किये और ज्ञान की अग्नि में सेंके गये चीले के स्वाद का क्या पूछना।''

निवृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर एवं सोपानदेव तीनों भाइयों ने भोजन कर लिया था। इतने में एक बड़ा-सा काला कुत्ता आया और बाकी चीले लेकर भागा।

निवृत्तिनाथ ने कहा : ''अरे, मुक्ता ! मार जल्दी इस कुत्ते को। तेरे हिस्से के चीले वह ले जा रहा है। तू भूखी रह जायेगी।''

मुक्ताबाई : ''मारूँ किसे ? विठ्ठल ही तो कुत्ता बन गये हैं। विठ्ठल काला-कलूटा रूप लेकर आये हैं। उनको क्यों मारूँ ?''

तीनों भाई हँस पड़े। ज्ञानेश्वर ने पूछा : ''जो तेरे चीले ले गया वह काला कुत्ता तो विठ्ठल है और विसोबा चाटी ?''

मुक्ताबाई : ''वे भी विठ्ठल ही हैं।''

अलग-अलग मन का स्वभाव अलग-अलग होता है लेकिन चेतना तो सबमें विठ्ठल की ही है।

वह बारह वर्षीया कन्या मुक्ताबाई कहती है : ''विसोबा चाटी में भी वही विठ्ठल है।''

विसोबा चाटी मुक्ता के साथ ही कुम्हार के घर से पीछा करता आया था। वह देखना चाहता था कि तवा न मिलने पर ये सब क्या करते हैं ? वह दीवार के पीछे से सारा खेल देख रहा था। मुक्ताबाई के शब्द सुनकर विसोबा चाटी का हृदय अपने हाथों में नहीं रहा। भागता हुआ आकर सूखे बाँस की नाईं मुक्ताबाई के चरणों में गिर पड़ा।

''मुक्तादेवी ! मुझे माफ़ कर। मेरे जैसा अधम कौन होगा ? मैंने बहकानेवाली बातें सुनकर आप लोगों को बहुत सताया है। आप लोग मुझ पामर

को क्षमा कर दें। मुझे अपनी शरण में ले लें। आप अवतारी पुरुष हैं। सबमें विठ्ठल देखने की भावना में सफल हो गये हैं। मैं उम्र में तो आपसे बड़ा हूँ लेकिन भगवद्ज्ञान में तुच्छ हूँ। आप लोग उम्र में छोटे हैं लेकिन भगवद्ज्ञान में पूजनीय, आदरणीय हैं। मुझे अपने चरणों में स्थान दें।''

कई दिनों तक विसोबा अनुनय-विनय करता रहा। आख़िर उसके पश्चाताप को देखकर निवृत्तिनाथ ने उपदेश दिया और मुक्ताबाई से दीक्षा-शिक्षा मिली। वही विसोबा चाटी प्रसिद्ध महात्मा विसोबा खेचर हो गये। जिनके द्वारा प्रसिद्ध संत नामदेव ने दीक्षा प्राप्त की।

बारह वर्षीया बालिका मुक्ताबाई केवल बालिका नहीं थी, वह तो आद्यशक्ति का स्वरूप थी। जिनकी कृपा से विसोबा चाटी जैसा ईर्ष्यालु प्रसिद्ध संत विसोबा खेचर हो गये।

नारी! तू नारायणी है। देवी! संयम-साधना द्वारा अपने आत्मस्वरूप को पहचान ले।

*

शोक और मोह का कारण है प्राणियों में विभिन्न भावों का अध्यारोप करना। मनुष्य जब एक को सुख देनेवाला, प्यारा, सुहृद समझता है और दूसरे को दुःख देनेवाला शत्रु समझकर उससे द्वेष करता है तब उसके हृदय में शोक और मोह का उदय होना अनिवार्य है। वह जब सर्व प्राणियों में एक अखण्ड सत्ता का अनुभव करने लगेगा, प्राणिमात्र को प्रभु का पुत्र समझकर उसे आत्मभाव से प्यार करेगा तब उस साधक के हृदय में शोक और मोह का नामोनिशान नहीं रह जायेगा। वह सदा प्रसन्न रहेगा। संसार में उसके लिए न ही कोई शत्रु रहेगा और न हीं कोई मित्र। उसको कोई क्लेश नहीं पहुँचायेगा। उसके सामने विषधर नाग भी अपना स्वभाव भूल जायेगा।

(आश्रम की पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

भक्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजी

[गतांक से आगे]

श्री तुलसीदास जी ने मिथिला से प्रस्थान किया। काशी में आकर गोस्वामीजी ने भगवान शिव और माता अन्नपूर्णा को श्री रामचरितमानस का पाठ सुनाया। रात को पुस्तक श्री विश्वनाथजी की मूर्ति के पास रख दी। प्रातःकाल पट खुलने के समय बड़े-बड़े विद्वान, सन्यासी, महात्मा वहाँ उपस्थित हुए। सबके सामने पट खोला गया। सबने बड़े आश्चर्य से देखा कि दिव्याक्षरों से पुस्तक पर लिखा हुआ है 'सत्यं शिवम् सुन्दरम' और नीचे हस्ताक्षर हैं यह न केवल लिखा हुआ था, बल्कि सब लोगों ने अपने कानों से सुना 'सत्यं शिवम् सुन्दरम'। यह बात चारों ओर फैल गयी, लोगों में आनंद का समुद्र उमड़ा। जय-जय की ध्वनि होने लगी। सभी अपना-अपना प्रेम प्रकट करने लगे।

पंडितों के मन में बड़ी चिंता हुई। उन्होंने सोचा हमारा तो सब मान-महात्म्य ही खो गया। यह आशीर्वादात्मक ग्रंथ जब सब लोग पढ़ेंगे तो फिर हम पण्डितों को कौन पूछेगा? वे दल बाँधकर निंदा करने लगे और उस पुस्तक को ही नष्ट कर देने का उद्योग करने लगे। पुस्तक चुराने के लिए दो चोर भेजे गए। उन्होंने जाकर देखा कि तुलसीदास की कुटी के आसपास दो वीर हाथ में धनुष-बाण लेकर पहरा दे रहे हैं। वे बड़े ही सुन्दर श्याम और गौर वर्ण के थे। रातभर उनकी सावधानी देखकर चोर बड़े प्रभावित हुए और उनके दर्शन से उनकी बुद्धि भी

शुद्ध हो गयी। भोर में उन्होंने श्री तुलसीदासजी के पास जाकर सब वृत्तांत कहा और पूछा कि आपके वे पहरेदार कौन हैं ? तुलसीदासजी की आँखों से आँसू की धारा बह चली, वाणी गद्गद् हो गयी। अपने प्रभु के कृपा-समुद्र में वे डूबने-उतराने लगे। उन्होंने अपने को सँभलकर कहा कि 'तुम लोग बड़े भाग्यवान् हो, धन्य हो कि तुम्हें भगवान के दर्शन प्राप्त हुए।' उन चोरों ने अपना चोरी का दुष्कृत्य छोड़ दिया और भजन में लग गये।

तुलसीदासजी ने कुंटी की सब वस्तुएँ लुटा दीं, मूल पुस्तक यत्न के साथ अपने मित्र टोडरमल के घर रख दी। श्रीगोस्वामीजी ने एक दूसरी प्रति लिखी। उसी के आधारपर पुस्तक की प्रतिलिपियाँ तैयार होने लगीं। दिन-दूना, रात-चौगुना प्रचार होने लगा। पण्डितों का दुःख बढ़ने लगा। उन्होंने प्रसिद्ध तांत्रिक वटेश्वर मिश्र से प्रार्थना की कि हम लोगों को बड़ी पीड़ा हो रही है। किसी प्रकार तुलसीदासजी का अनिष्ट होना चाहिए। उन्होंने मारण-प्रयोग किया और प्रेरणा करके भैरव को भेजा। भैरव तुलसीदास के आश्रम पर गए वहाँ हनुमानजी को तुलसीदासजी की रक्षा करते हुए देखकर भयभीत होकर लौट आये, मारण का प्रयोग करनेवाले वटेश्वर मिश्र के प्राणों पर ही आ बीती।

लेकिन अब भी पण्डितों का समाधान नहीं हुआ। उन्होंने श्रीमधुसूदन सरस्वती जी के पास जाकर कहा कि भगवान शिव ने उनकी पुस्तक पर सही तो कर दी है, परंतु वह किस श्रेणी की पुस्तक है, यह बात नहीं बतलायी है। अब आप उसे देखिये और बतलाइये कि वह किसके समकक्ष है। श्री मधुसूदन सरस्वतीजी ने रामायण की पुस्तक मँगायी। उसका आद्योपांत अवलोकन किया और उन्हें बड़ा आनंद हुआ। उन्होंने उस पुस्तक पर सम्मति लिख दी।

आनंदकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

जब पण्डितों ने आकर मधुसूदन सरस्वतीजी से पूछा तब स्वामीजी ने कहा कि यह बात श्रीशंकर जी से ही क्यों न पूछ ली जाय ? पण्डितों ने स्वीकार किया। श्रीशंकरजी के सामने सबसे ऊपर वेद, वेदों से नीचे शास्त्र, शास्त्रों से नीचे पुराण और पुराणों से नीचे रामचरितमानस को रखा गया।

प्रातःकाल पट खुलने के समय लोगों की भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोगों ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा कि वेदों के ऊपर श्रीरामचरितमानस ग्रंथ रखा हुआ है। पण्डित लोग संकोच से गड़ गये। उन्होंने तुलसीदासजी से क्षमा माँगी, उनका चरणोदक लिया।

नवद्वीप के एक बड़े भारी विद्वान थे। उनका नाम था श्रीरविदत्त। उन्होंने तुलसीदासजी के न चाहने पर भी उनसे शास्त्रार्थ किया। जब हार गये, तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। श्री गोस्वामीजी स्नान करने जा रहे थे कि वे उन्हें मारने के लिए लाठी लेकर पहुँच गये। परंतु रक्षक रूप श्री हनुमानजी को देखकर भाग गये और अपनी करनी पर आप ही लज्जित हुए। उन्होंने गोस्वामीजी को प्रसन्न किया और वर देने के लिए बड़ा हठ किया। उन्होंने यही वर माँगा कि आप काशीपुरी छोड़ दीजिये। तुलसीदासजी ने वर दे दिया। तुलसीदासजी वचन दे चुके थे, इसलिए विवश थे। उन्होंने भगवान शंकर से प्रार्थना करके दक्षिण दिशा के लिए प्रस्थान किया। श्रीशिवजी ने तुलसीदास जी को दर्शन देकर उनके क्षुब्ध मन को धैर्य दिया और लौटा लिया।

श्री तुलसीदासजी का जाना सुनकर रविदत्त पण्डित भगवान शंकर के दर्शन करने गये। उनके जाते ही मन्दिर के पट बंद हो गये और क्रोध भरी आवाज सुनायी पड़ी कि जाकर गोस्वामीजी के पैर पर गिरो और विनय करके उन्हें मना लाओ। उन्हें यहीं लाकर बसाओ, नहीं तो तुम्हारा नाश हो जायेगा। (क्रमशः)

भारत को ईसाई बनाने का षड़यंत्र

'अति सर्वत्र वर्जयेत '- अर्थात् अति का हर क्षेत्र में निषेध है । बुरी बात तो बुरी बात ही होती है, उसमें अति या अनीति का प्रश्न ही क्या ? अच्छी बात भी जब अपनी वाछिंत मर्यादा का उल्लंघन कर जाती है, तो वही बुराई की कोटि में पहुँच जाती है ।

धार्मिक सहिष्णुता एक महान् गुण है । किसी दूसरे के धार्मिक विचारों तथा कार्यों में हस्तक्षेप न करना स्वयं ही एक धार्मिकता है । हिन्दुओं ने इस गुण का जितना व्यापक परिचय दिया है, उसका हजारवाँ भाग भी संसार की कोई अन्य जाति न दे सकी । बल्कि यह कहने में भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि वेद-धर्म के अनुयायियों को छोड़कर संसार की अधिकांश जातियों ने असहिष्णुता का ही परिचय दिया है ।

किन्तु बहुत समय से हिन्दुओं की धार्मिक सहिष्णुता अति की सीमा में पहुँच गयी है, जिसके फलस्वरुप गुण, अवगुण बन गया है । अतिशयता हो जाने से हिन्दुओं की सहिष्णुता धार्मिक उपेक्षा के दोष से दूषित हो गयी है । सहिष्णु होते-होते वे इतने धर्मनिरपेक्ष बन गये कि अपने धर्म पर किये जाने वाले आघात भी इस प्रकार सहन करने लगे हैं, मानो यह अन्य धर्मावलम्बियों का धार्मिक अधिकार हो, जिसमें हस्तक्षेप न करना उनका कर्तव्य है ।

हिन्दुओं की इस सहिष्णुता से प्रोत्साहित होकर अन्य धर्मावलम्बियों ने क्या-क्या किया और इससे हिन्दू राष्ट्र को कितनी क्षति हुई है ? यह बात किसी से छिपी नहीं है । विगत हानियों तथा अत्याचारों की चर्चा करना बेकार है । किन्तु वर्तमान में हिन्दु-जाति पर ईसाईयों का जो आक्रमण हो रहा है, उसकी ओर से आँखें बन्द नहीं की जा सकती हैं ।

भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है और भारत सरकार धर्मनिरपेक्षता की संरक्षिका । विधान की इस धारा के अनुसार भारत में सभी धर्मों को फलने-फूलने और विकसित होने का अधिकार है । किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं कि कोई एक धर्म दूसरे किसी धर्म को मिटाकर फूल-फल सकता है । ईसाई पादरी भारतीय विधान की इस धारा का दुरुपयोग करके हिन्दू धर्म को मिटाकर अपने ईसाई धर्म का विस्तार करने में बुरी तरह जुटे हुए हैं ।

भारत में पादरियों का धर्म प्रचार हिन्दू धर्म को मिटाने का खुला षड़यंत्र है, जो कि एक लम्बे अरसे से चला आ रहा है, अब उपेक्षावश और तीव्र तथा प्रबल हो गया है । ईसाई पादरियों के इस धर्म प्रचार का क्या उद्देश्य है ? यह समय-समय पर किये उनके कथनों, लेखों तथा वक्तव्यों से सहज ही पता लग जाता है ।

'लाइट ऑफ लाइफ' कैथोलिक पत्रिका के १९६४ के जुलाई अंक में ईसाई नवयुवकों को परामर्श देते हुए निर्देश किया गया-''ईसाई छात्रों तथा स्नातकों का यह कर्तव्य है कि वे ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखा करें और इस विषय में वे धर्म-निरपेक्ष नीति वाली पत्र-पत्रिकाओं का लाभ उठा सकते हैं । किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वे शुरू-शुरू में ही अपने लेखों में ईसाईयत का प्रचार करने लगें । अच्छा तो यह होगा कि पहले वे सामान्य लेख लिखकर आगे चलकर के पन्नों में खुलकर ईसाई विचारधारा का प्रचार करें । ''

यह क्या है ? ईसाई नवयुवकों को धर्मनिरपेक्ष पत्र-पत्रिकाओं में घुसने और उनके माध्यम से भारत में ईसाईयत फैलाने के लिए खुला प्रोत्साहन तथा आह्वान है । इसे धर्मनिरपेक्षता का अनुचित लाभ उठाने के लिए एक षड़यंत्र के सिवाय और क्या कहा जायेगा । जहाँ धर्मनिरपेक्षता की नीति भारत के हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई सभी को एक समान तथा सामान्य राष्ट्रीय विचारधारा में लाने का प्रयत्न कर रही है, वहाँ विदेशी मिशनरी ईसाई नवयुवकों की धार्मिक भावनाओं को भड़काकर उन्हें षड़यंत्र का सहायक अस्त्र बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं । क्या भारत के राष्ट्रीय हित में सहन

करने योग्य बात है ?

ईसाई पादरियों तथा मिशनरियों का ऐसा ज्वलन्त आह्वान और भयानक विचार न केवल भारत के हिन्दुओं अपितु सारी गैर ईसाई जनसंख्या की आँखे खोल देने को एक खुली चुनौती है। अपने धर्म की रक्षा तथा भारतीय राष्ट्र की एकता के लिए क्या यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि गैर-ईसाई जनता विदेशी मिशनरियों के अनुचित इरादों को असम्भव बना देने के लिए आवाज उठाये । यदि भारत की जनसंख्या यों ही विदेशी मिशनरियों की गतिविधियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखकर प्रमाद में ही पड़ी रही तो यह असम्भव बात न होगी कि ईसाई 'ईसाई भारत ' के अपने ध्येय के बहुत कुछ समीप जा पहुँचे और तब क्या हिन्दू, क्या मुसलमान और क्या सिक्ख सभी धर्मों के मिट जाने का खतरा पैदा हो सकता है।

यह बात सही है कि ईसाई मिशनरियों को हिन्दुओं की अपेक्षा अन्य धर्म वालों पर अपना प्रपंच चलाना आसान नहीं पड़ता । वे मुख्यतः हिन्दुओं को ईसाई बनाने में जुटे हुए हैं, इसके दो मुख्य कारण हैं - पहला, अति धर्म-सहिष्णुता, वे धर्म-बन्धुओं के बीच इसी अति के दोष से ईसाईयत का प्रचार सहन करते जा रहे हैं । दूसरा यह कि गैर ईसाई अहिन्दुओं की धार्मिक रूढ़िवादिता के कारण ईसाई मिशनरियों को उनके बीच जाल बिछाने का अधिक अवसर नहीं मिलता। अहिन्दू गैर-ईसाइयों की रूढ़िवादिता उन्हें अपने बीच धँसने को साहस नहीं करने देती। किन्तु इसका यह अर्थ लगाना गलत होगा कि अहिन्दू गैर-ईसाई ईसाईयों के धार्मिक षड़यंत्र से सुरक्षित हैं और यदि वे ऐसा सोचते हैं तो गहरी भूल करते हैं । अहिन्दू गैर-ईसाईयों को भी इस षड़यंत्र की, जो ईसाईयों ने प्रचार-प्रपंच चला रखा है, उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और समझ लेना चाहिए कि हिन्दुओं पर किया गया आघात परोक्ष रूप में उन पर भी एक आघात है।

कैथोलिक ईसाई-पत्रों के कथनों से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि भारत के गैर-ईसाई समुदाय से ईसाई मिशनरियों को ईर्ष्या है और वे उनकी विशाल जनसंख्या को फूटी आँखों भी नहीं देख पा रहे हैं। वे सम्पूर्ण भारत को ईसाई बनाकर 'ईसाई भारत' का स्वप्न देखते हैं और उसके लिए हर उचित अनुचित उपाय करते जा रहे हैं।

ईसाईयों से अपने को सुरक्षित समझने वाले बौद्ध, सिक्ख, पारसी, मुसलमान और यहूदी आदि को इस बात पर गहराई से विचार करना चाहिए कि भारत की धर्म-निरपेक्षता तथा हिन्दुओं की उपेक्षापूर्ण धार्मिक सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाते हुए यदि ईसाई मिशनरी इसी तेजी से हिन्दुओं को अपने जाल में फँसाने में सफल होते रहे तो शीघ्र ही उनकी जनसंख्या भारत में बहुत अधिक हो जायेगी और तब ऐसी स्थिति में भारत के सारे गैर ईसाई उनकी तुलना में अल्पसंख्यक हो जायेंगे। क्या ईसाईयों का यह बहुमत तब शक्ति पाकर सम्पूर्ण भारत को ईसाई देखने के लिए व्यग्र पोप, पादरियों तथा प्रचारकों को अल्पसंख्यक गैर ईसाईयों को अपने में आत्मसात करने के प्रपंचों के लिए साहस, अवसर तथा प्रोत्साहन नहीं देगा ? इसलिए भारत की धर्म-निरपेक्ष नीति, धार्मिक सहिष्णुता तथा राष्ट्रीय स्वरुप को सुरक्षित रखने और लोकतन्त्र की गरिमा बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि ईसाईयों के इस बढ़ते धार्मिक साम्राज्य को रोकने का प्रयत्न करें।

हिन्दुओं का तो यह धार्मिक कर्त्तव्य है कि वे ईसाईयों के षड़यंत्र से आत्मरक्षा में अपना तन-मन-धन लगा दे और आज जो हिन्दुओं को लपेटती हुई ईसाईयत की लपट परोक्ष रूप से उनकी ओर बढ़ रही है, इसे यहीं पर बुझा दें। ऐसा करने से ही भारत में धर्मनिरपेक्षता, धार्मिक बन्धुत्व तथा सच्चे लोकतन्त्र की रक्षा हो सकेगी अन्यथा पुनः आजादी को खतरा की सम्भावना हो सकती है।

यह स्पष्ट है कि पाश्चात्य देशों की सरकारें तथा संस्थाएँ भारत में मिशनरियों को एजेन्ट रूप में भेज कर ईसायइत को बढ़ावा दे रही हैं और एक प्रकार से वे धर्म का आधार लेकर उन देशों का साम्राज्य ही भारत में स्थापित करने का प्रयत्न कर रही हैं । विदेशों के इस धर्मधारी साम्राज्यवाद से बचाव हेतु सम्पूर्ण गैर ईसाइयों को एक मंच पर आकर ईसाइयों के मलीन मन्तव्यों को सफल होने से रोकने के लिए भरसक प्रयत्न करना ही चाहिए।

- श्री राम शर्मा आचार्य

संकलनकर्ता : दीपक बाँकी, अमदावाद।

भारतीय वेशभूषा का वैज्ञानिक आधार

* सनातन धर्म ही वैज्ञानिक धर्म *

मैंने ४० वर्षों तक विश्व के सभी बड़े धर्मों का अध्ययन करके पाया कि हिंदू धर्म के समान पूर्ण, महान और वैज्ञानिक धर्म कोई नहीं है। – एनी बेसेंट

विश्व में किसी भी धर्म में इतनी व्यर्थ, अवैज्ञानिक, आपस में विरोधी और अनैतिक बातों का उपदेश नहीं दिया जितना चर्च ने दिया है। – टॉलस्टाय

सनातन धर्म की परम्पराएँ, रीति-रिवाज पूर्णतः वैज्ञानिक हैं। भारत के तपस्वी ऋषि-महर्षियों ने तपस्या-समाधि करके मानव जाति के स्वस्थ व सुखी जीवन के लिए विभिन्न युक्तियों की खोज की, जिनका पालन परंपरागत रूप से हिन्दू तथा हिन्दू धर्म पर आस्था रखनेवाले करते आये हैं। विश्व के अनेक वैज्ञानिकों ने हिन्दू धर्म की परम्पराओं का गहन अध्ययन किया है जो विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरी हैं।

भारत के कई कॉन्वेन्ट स्कूलों में विद्यार्थियों को भारतीय परिधान व आभूषण पहनने पर रोक लगाया जाना व दण्डित किया जाना चिन्ताजनक है।

अलंकार धारण करना फैशन का प्रतीक नहीं अपितु तन और मन की चिकित्सा-पद्धति का एक अंग है। अलग-अलग धातुओं के मानव शरीर पर पड़नेवाले प्रभाव के बारे में हमारे पूर्वज जानते थे। इतना ही नहीं, इन चीजों का औषध के रूप में भी उपयोग होता था और आज भी हो रहा है। जैसे, सुवर्ण भस्म, रजत भस्म, बंग भस्म, लौह भस्म आदि।

दुनिया के कुछ देशों में आभूषण चिकित्सा पद्धति (Ornament Therapy) का प्रयोग होता है। अमेरिका के वैज्ञानिक डॉ. हार्डस्टोन ने धातु और रत्नों की चिकित्सा पद्धति (Gem Therapy) का उपयोग किया है। फ्रांस में भी इस पर प्रयोग हुए हैं और इसमें उनको सफलता भी मिली है।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार कमर के नीचे के भागों पर सोने के आभूषण धारण करना वर्जित है। चाँदी के आभूषण पूरे शरीर पर धारण कर सकते हैं।

* आभूषणों का शरीर के अंगों पर प्रभाव *

पायल : (१) पैर के तलुओं में होनेवाली जलन को रोकती है। (२) ऐड़ी की सूजन से भी रक्षा करती है। (३) रक्त के परिसंचरण को व्यवस्थित रखती है। (४) सायटिका के रोग में लाभदायी है। (५) लिम्फ ग्रंथियों को कार्यान्वित करके रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाती है। (६) अनेक प्रकार के स्त्री रोगों जैसे, मासिक धर्म संबंधी, प्रसूति संबंधी, वंधत्व, हारमोन्स आदि में लाभदायक है। (७) स्वास्थ्य और सुंदरता के लिए शरीर की चेतना के प्रवाह को व्यवस्थित करके तंदुरुस्ती की रक्षा करती है। (८) कामवासना पर नियंत्रण रखने में सहायक होती है।

कर्ण कुंडल : भारतीय संस्कृति में कर्ण छेदन का भी एक विशेष महत्त्व है। चिकित्सकों एवं भारतीय दर्शनशास्त्रियों का मानना है कि कर्ण के छेदन से बुद्धिशक्ति, विचारशक्ति एवं निर्णयशक्ति का विकास होता है। वाणी के व्यय से जीवन शक्ति का ह्रास होता है। कर्णछेदन से वाणी के संयम में सहायता मिलती है। इससे उच्छृंखलता नियंत्रित होती है और कर्णनलिका दोषरहित बनती है। यह विचार पाश्चात्य जगत के लोगों को भी जँचा और वहाँ आज फैशन के रूप में कर्ण का छेदन कराकर कुंडल पहना जाता है। **कंगन** : कंगन से जननेन्द्रिय पर नियंत्रण रहता है और कामवासना संतुलित रहती है। यह हृदय को पुष्ट करता है। रक्त के दबाव को नियंत्रित करता है। **बाजूबंद** : इससे वीरता के गुण विकसित होते हैं और शरीर सुडौल रहता है। पाचन तंत्र को व्यवस्थित रखकर एलर्जी से रक्षा करता है। **हार** : विभिन्न रत्नों एवं धातुओं से बने हार अनेक रोगों को नियंत्रित करने में लाभदायी हैं। थायराइड ग्रन्थि एवं श्वसनतंत्र पर इसका अच्छा असर पड़ता है। **करधनी** : मूलाधार केन्द्र को जागृत करके किडनी और मूत्राशय की कार्यक्षमता को बढ़ाती है तथा कमर आदि के दर्दों में राहत देती है। **अँगूठी** : ऊर्जा के विकास, मानसिक तनाव दूर करने, जननेन्द्रिय पर नियंत्रण पाने, कामवासना पर नियंत्रण रखने और पाचन तंत्र को मजबूत बनाने हेतु अँगूठी पहनी जाती है। विभिन्न धातुओं की अँगूठी का शरीर पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, ऐसे ही अलग-अलग रत्न (नग) का भी अपना अलग-अलग प्रभाव होता है। विश्व प्रसिद्ध संत परम पूज्य श्री आसारामजी बापू के हाथ में भी रत्नजड़ित अँगूठी देखी जा सकती है।

'केन्टरबरी इन्स्टीट्यूट' में किए गये प्रयोग से सिद्ध हुआ है कि नाभि, सिर, हाथ एवं पैरों को वस्त्र से ढककर रखने से सुरक्षा की भावना दृढ होती है। मस्तिष्क में बहती ऊर्जायें भृकुटी में से प्रसार होती हैं। दोनों भौंहों के बीच

बिन्दी अथवा तिलक लगाने (जैसा हिन्दू लोग करते हैं) से इस ऊर्जा का रक्षण होता है। पैरों के रक्षण हेतु वहाँ लोहे के कड़े पहने जाते हैं।

(एस्ट्रल ट्रावेल्स, गेवन और ईवोन फ्रॉस्ट की पुस्तक से)

✻ वेशभूषा एवं शील का महत्त्व ✻

नारी के समान अधिकार के नाम पर सौन्दर्य स्पर्धाओं के द्वारा भारतीय युवतियों का खुल्लेआम शोषण हो रहा है। समाचार पत्रों, टी.वी., होर्डिंग्स, दुकानों के 'शोकेशों' में स्त्री देह की नग्नता का प्रदर्शन करके उसे ऐसी निम्न कक्षा में रख दिया है कि वह स्वतंत्र न रहकर निर्लज्ज विज्ञापन निर्माताओं, सौन्दर्य स्पर्धा के आयोजकों, फैशन एवं मॉडलिंग के ठेकेदारों के हाथ का एक सस्ता खिलौना बन चुकी है। स्त्रियों के प्रति सम्मान एवं दैवीभाव का आदर शीघ्रता से कम हो रहा है। मानो स्त्री वासना पोषने का एक पुतला मात्र है। स्त्रियों के लिए उपस्थित इस नयी गुलामी के सामने लड़ने का बीड़ा न तो स्त्री संस्थाओं ने उठाया है और न ही सरकार ने। दुःख की बात तो यह है कि आज विद्यालयों में छात्राओं को स्कर्ट पहनने पर बाध्य किया जाता है। उनकी खुली जांघें लड़कों में कामवासना उभारती हैं, कामुक वातावरण पैदा करती हैं। यह लड़की एवं लड़के दोनों के लिए सत्यानाश का कारण बनता है। पाश्चात्य जगत में मिनी स्कर्ट एवं अंगप्रदर्शन के कारण बलात्कार तथा चरित्रहनन की अनेक घटनायें होती हैं। हमें इससे सीख लेने की जरूरत है।

ऐसे ही विद्यालयों में विद्यार्थियों को 'टाई' पहनने के लिए बाध्य किया जाता है। यह न तो अपने देश तथा वातावरण के अनुकूल है और न ही हमारे स्वास्थ्य के अनुरूप है। वास्तव में तो 'टाई' बालकों के मन में बचपन से ही गुलामी के संस्कार भरने का महत्त्वपूर्ण साधन बन रही है।

मुस्लिम धर्म में नौ साल के बाद लड़की के मुँह के अलावा सभी अंगों को वस्त्र से ढककर रखना जरुरी होता है। युवावस्था में उन्हें बुर्का पहनाया जाता है जिससे उनका पूरा शरीर ढका होता है। अपने भाई और पिता के अलावा अन्य किसी भी पुरुष के साथ बात न करने का आदर्श कुछ नियमनिष्ठ मुस्लिम आज भी पाल रहे हैं।

यूरोप की एक 'हटराइट' नाम की जाति है जो अमेरिका और कनाडा में बसी हुई है। वहाँ के लोग भी अपनी वेशभूषा के प्रति सतर्क हैं। उनकी स्त्रियाँ भी ऐसे वस्त्र पहनती हैं जिससे उनके हाथ एवं चेहरे के अलावा शरीर के अन्य अंग न दिखें।

...तो फिर अपने देश में मिशनरी स्कूलें बहनों के सलवार पहनने का विरोध क्यों कर रही हैं ? निर्लज्ज वेषभूषा के लिए क्यों आग्रह रखती हैं ?

✻ तिलक : बुद्धिबल एवं सत्त्वबलवर्धक ✻

ललाट पर दोनों भौंहों के बीच विचारशक्ति का केन्द्र है। योगी इसे आज्ञाचक्र कहते हैं। इसे शिवनेत्र अर्थात् कल्याणकारी विचारों का केन्द्र भी कहा जाता है। यहाँ किया गया चन्दन अथवा सिन्दूर आदि का तिलक विचारशक्ति एवं आज्ञाशक्ति को विकसित करता है। इसलिए हिन्दू धर्म में कोई भी शुभ कार्य करते समय ललाट पर तिलक किया जाता है।

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू को चन्दन का तिलक लगाकर सत्संग करते हुए लाखों-करोड़ों लोगों ने देखा है। वे लोगों को भी तिलक करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। भाव प्रधान, श्रद्धाप्रधान केन्द्रों में जीनेवाली महिलाओं की समझ बढ़ाने के उद्देश्य से ऋषियों ने तिलक की परम्परा शुरु की। अधिकांश स्त्रियों का मन स्वाधिष्ठान एवं मणिपुर केन्द्र में ही रहता है। इन केन्द्रों में भय, भाव और कल्पना की अधिकता होती है। वे भावना एवं कल्पनाओं में बह न जायें, उनका शिवनेत्र, विचारशक्ति का केन्द्र विकसित हो इस उद्देश्य से ऋषियों ने स्त्रियों के लिए बिन्दी लगाने का विधान रखा है।

गार्गी, शाण्डिली, अनुसूया एवं अन्य कई महान् नारियाँ इस हिन्दू धर्म में प्रगट हुई हैं। महान् वीरों, महान् पुरुषों, महान् विचारकों तथा परमात्मा के दर्शन कराने का सामर्थ्य रखनेवाले संतों को जन्म देनेवाली मातृशक्ति को आज कई मिशनरी स्कूलों में तिलक करने से रोका जाता है। इस तरह का अत्याचार हिन्दुस्तानी कहाँ तक सहते रहेंगे ? मिशनरियों के षड्यंत्रों का शिकार कब तक बनते रहेंगे ?

जबलपुर से प्रकाशित दैनिक स्वदेश, ५ जुलाई के अनुसार मिशनरी स्कूलवाले शिक्षकों को ईसाई बनने को मजबूर कर रहे हैं। हिंदू धर्म की महिमा जाननेवाले बहादुर शिक्षकों (सर्वश्री ए. के. तिवारी, एस.के. श्रीवास्तव, आर.के. मिश्रा व दीपक तिवारी) ने ईसाई बनने से इंकार किया तो उन्हें मिशनरी के स्कूल से निकाल दिया गया। शिक्षक बंधुओं ने सत्याग्रह व आत्महत्या तक की तैयारी करके आंदोलन छेड़ा। तब कहीं सरकार की आँखें खुली और मिशनरियों को शिक्षकों को स्कूल में रखने पर मजबूर होना पड़ा।

सरकार में घुसे मिशनरियों के दलाल, चमचे और धन लोलुप अखबारवाले जो ग्रीस व रोम की तरह इस भारत देश को तबाह करने पर उतारू हैं, उन धिक्कार के पात्रों को खुले आम सबक सिखाओ। *- डॉ. प्रेमजी मकवाणा*

एकादशी माहात्म्य

[परिवर्तिनी (वामन) एकादशी : २९ अगस्त २००१]

अर्जुन ने कहा : ''हे भगवन् ! भादों की शुक्ल पक्ष की एकादशी का क्या नाम है तथा उसके व्रत की विधि क्या है ? उसे करने से कौन-सा फल मिलता है, हे मधुसूदन ! यब सब समझाकर कहिए।''

भगवान श्री कृष्ण बोले : ''हे अर्जुन ! भादों मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को जयन्ती एकादशी भी कहते हैं। इस एकादशी की कथा को सुनने मात्र से समस्त पापों का नाश होता है। इस जयन्ती एकादशी की कथा से नीच पापियों का भी उद्धार हो जाता है। यदि कोई धर्मपरायण मनुष्य एकादशी के दिन मेरी पूजा करता है तो मैं उसको सारे संसार की पूजा का फल देता हूँ और उसे मेरे लोक की प्राप्ति होती है। इसमें किंचित मात्र भी सन्देह नहीं। जो मनुष्य इस एकादशी के दिन श्रीवामन भगवान की पूजा करता है वह तीनों देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा करता है। हे अर्जुन ! जो मनुष्य इस एकादशी का व्रत करते हैं, उन्हें इस संसार में कुछ भी करना शेष नहीं रहता। इस एकादशी के दिन श्रीविष्णु भगवान करवट बदलते हैं, इसलिए इसे परिवर्तिनी एकादशी भी कहते हैं।''

इस पर आश्चर्यचकित होकर अर्जुन बोले : ''हे कृष्णजी ! आपके वचनों को सुनकर मैं भ्रम मे पड़ गया हूँ कि आप किस प्रकार सोते तथा करवट बदलते हैं ? आपने बलि को क्यों बाँधा और वामन रूप धारण करके क्या लीलाएँ कीं ? सो सब कृपापूर्वक कहिये।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''हे अर्जुन ! अब तुम पापों को नष्ट करनेवाली इस कथा का श्रवण करो। त्रेतायुग में बलि नाम का एक दानव अत्यन्त भक्त, दानी, सत्यवादी तथा ब्राह्मणों की सेवा करनेवाला था। वह सदैव यज्ञ, तप आदि किया करता था। अपनी इसी भक्ति के प्रभाव से वह स्वर्ग में इन्द्र के स्थान पर राज्य करने लगा। इन्द्र तथा अन्य देवता इस बात को सहन न कर सके और भगवान के पास जाकर प्रार्थना करने लगे। अन्त में मैंने वामन रूप धारण किया और तेजस्वी ब्राह्मण बालक के रूप में राजा बलि को जीता।''

इस पर अर्जुन बोले : ''हे जनार्दन ! आपने वामन रूप धारण करके उस बलि को किस प्रकार जीता, यह सब विस्तारपूर्वक समझाइये।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''मैंने वामनरूप धारण करके राजा बलि से याचना की कि हे राजन् ! तुम मुझे तीन पैर भूमि दे दो, इससे तुम्हें तीन लोक के दान का फल प्राप्त होगा। राजा बलि ने इस छोटी-सी याचना को स्वीकार कर लिया और भूमि देने को तैयार हो गया। जब उसने मुझे वचन दिया, तब मैंने अपने आकार को बढ़ाया और भूलोक में पैर, भुवनलोक में जंघा, स्वर्गलोक में कमर, महर्लोक में पेट, जनलोक में हृदय, तपलोक में कंठ और सत्यलोक में मुख रखकर अपने सिर को ऊंचा उठा लिया। उस समय सूर्य, नक्षत्र, इन्द्र तथा अन्य देवता मेरी स्तुति करने लगे। उस समय मैंने राजा बलि से पूछा : 'हे राजन् ! अब मैं तीसरा पैर कहाँ रखूँ ?' इतना सुनकर राजा बलि ने अपना सिर नीचा कर लिया। तब मैंने अपना तीसरा पग उसके सिर पर रख दिया और इस प्रकार देवताओं के हित के लिए मैंने अपने उस असुरभक्त को पाताल लोक में पहुँचा दिया। तब वह मुझसे विनती करने लगा। मैंने उससे कहा कि हे बलि ! मैं सदैव तुम्हारे पास रहूँगा। भादों के शुक्ल पक्ष की परिवर्तिनी नामक एकादशी के दिन मेरी एक प्रतिमा राजा बलि के पास रहती है और एक क्षीर सागर में शेषनाग पर शयन करती रहती है।''

इस एकादशी को विष्णु भगवान सोते हुए करवट बदलते हैं। इस दिन त्रिलोकी के नाथ श्री विष्णु भगवान की पूजा की जाती है। इसमें चावल और दही सहित चाँदी का दान किया जाता है। इस दिन रात्रि को जागरण करना चाहिए। इस प्रकार व्रत करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर स्वर्ग लोक को जाता है और वहाँ सदैव चन्द्रमा के समान प्रकाशित रहता है। उसको इस लोक तथा परलोक में यश मिलता है। जो इस पापनाशक कथा का श्रवण करते हैं, उन्हें अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। [*'पद्म पुराण' से*]

वर्षा ऋतुचर्या

वर्षा ऋतु में वातावरण के प्रभाव के कारण स्वाभाविक ही जठराग्नि मंद रहती है, जिसके कारण पाचन शक्ति कम हो जाने से अजीर्ण, बुखार, वायुदोष का प्रकोप, सर्दी, खाँसी, पेट के रोग, कब्जियत, अतिसार, प्रवाहिका, आमवात, संधिवात आदि रोग होने की संभावना रहती है।

इन रोगों से बचने के लिए तथा पेट की पाचक अग्नि को सँभालने के लिए आयुर्वेद के अनुसार उपवास एवं लघु भोजन हितकर है। इसीलिए हमारे आर्षदृष्टा ऋषि-मुनियों ने इस ऋतु में अधिक-से-अधिक उपवास बनाकर धर्म के द्वारा शरीर के स्वास्थ्य का ध्यान रखा है।

इस ऋतु में पानी को उबालें, आधा जल जाने पर उतार कर ठंडा होने दें, तत्पश्चात हिलाये बिना ही ऊपर का पानी दूसरे बर्तन में भर दें एवं उसी पानी का सेवन करें।

५०० ग्राम हरड़ और ५० ग्राम सैंधा नमक का मिश्रण बनाकर ५-६ ग्राम प्रतिदिन लेना चाहिए।

पथ्य आहार : सेवफल, मूँग, गरम मसालेवाला दूध, लहसुन, अदरक, सौंठ, कालीमिर्च, अजवाइन, साठी के चावल, पुराना अनाज, गेहूँ, चावल, जौ, खट्टे एवं खारे पदार्थ, दलिया, शहद, प्याज, गाय का घी, तिल एवं सरसों का तेल, महुए का अरिष्ट, अनार, द्राक्ष।

अपथ्य आहार : गरिष्ठ भोजन, उड़द, मठ, तुआ, चौला आदि दलहन, मैदे की चीजें, ठंडे पेय, आइसक्रीम, मिठाई, केला, नदी, तालाब, एवं कुएँ का बिना उबाला हुआ पानी, अंकुरित अनाज, पत्तियोंवाली सब्जी, **देवशयनी एकादशी के बाद आम नहीं खाना चाहिए।**

पथ्य विहार : अंगमर्दन, उबटन, स्वच्छ हल्के वस्त्र पहनना योग्य है।

अपथ्य विहार : अतिव्यायाम, स्त्रीसंग, दिन को सोना, बारिश में भीगना, नदी में तैरना, धूप में बैठना, खुल्ले बदन घूमना त्याज्य है। चातुर्मास में आँवला और तिल का मिश्रण पानी में डालकर स्नान करने से दोष निवृत्त होते हैं।

[साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत।]

नेत्र रोग विशेषज्ञ डॉ. अनन्त अग्रवाल संत रामदासजी की आँख चेक करते हुए।

नेत्र बिन्दु का चमत्कार

मेरा सौभाग्य कि मुझे 'नेत्र बिन्दु' (आई ड्रॉप) का चमत्कार देखने को मिला। एक सन्त बाबा शिव रामदास उम्र ७८ वर्ष, गीता कुटीर, तपोवन झाड़ी, सप्त सरोवर, हरिद्वार में रहते हैं। उनकी दाहिनी आँख में सफेद मोतिये का ऑपरेशन शांतिकुंज हरिद्वार में आयोजित कैम्प में एक साल पहले हुआ। केस बिगड़ गया और काला मोतिया बन गया। दर्द रहने लगा और रोशनी घटने लगी। दोबारा भूमानन्द नेत्र चिकित्सालय में ऑपरेशन हुआ। अब स्योलूट ग्लूकोमा बताते हुए कहा गया कि ऑपरेशन से सिर दर्द ठीक हो जायेगा पर रोशनी जाती रहेगी। वे संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा निर्मित संतकृपा 'नेत्र बिन्दु' सुबह शाम डाल रहे हैं। पिछले एक-सवा महीने से आज २२ जून २००१ को मैंने उनका परीक्षण किया। वे खुद में काफी संतुष्ट थे। उनकी दाहिनी आँख में उँगली गिनने लायक रोशनी वापस आ गयी है। काले मोतिये का प्रेशर नॉर्मल है। कोर्निया में सूजन नहीं है। वे बताते हैं आँख पहले लाल रहती थी परन्तु अब नहीं है। आश्रम के 'नेत्र बिन्दु' से कल्पनातीत लाभ हुआ। बायीं आँख में भी उन्हें सफेद मोतिया बताया गया था और अन्देशा बताया गया था कि काला मोतिया भी है। पर आज बायीं आँख भी ठीक है। प्रेशर नॉर्मल है। सफेद मोतिया नहीं है और रोशनी काफी अच्छी है। यह संतकृपा नेत्र बिन्दु का विलक्षण प्रभाव देखकर मैं भी अपने मरीजों को संतकृपा नेत्र बिन्दु उपयोग करने की सलाह दूँगा।

- डॉ. अनन्त कुमार अग्रवाल
नेत्र रोग विशेषज्ञ
एम.बी.बी.एस., एम.एस. (नेत्र), डी.ओ.एम.एस. (आई) सीतापुर
सहारनपुर (उ.प्र.).

❊ संस्था समाचार ❊

गुरुपूर्णिमा महोत्सव : गुरुपूर्णिमा व्यासस्वरूप सद्गुरु के दर्शन का महापर्व है। दीपावली को पर्वों की महारानी कहा जाता है जो ५ दिनों तक सतत् आनंदोल्हास के साथ मनायी जाती है। शिष्यों की दृष्टि से सद्गुरु दर्शन के इस महापर्व को पर्वों का सम्राट कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। देश के ४ प्रमुख स्थानों में कुल १४ दिनों तक पूज्यपाद सद्गुरुदेव के पावन सान्निध्य में दर्शन-सत्संग का सिलसिला चलता रहा।

दिल्ली २४ से २६ जून : दिल्ली के रोहिणी सेक्टर ११ में उ.प्र., हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, बिहार व उत्तर भारत के लाखों साधक-साधिकाओं ने सत्संग-दर्शन प्राप्त किया। सूर्यदेव की तपती किरणों को शीतल बनाने में इन्द्रदेव ने कोई कसर नहीं छोड़ी। कभी बादल तो कभी वर्षा की रिमझिम फुहार, तो कभी मूसलाधार वर्षा, तो कभी सूर्यनारायण की आँख मिचौली। प्रकृति की इन विभिन्न छटाओं के दर्शन १४ दिवसीय महोत्सव में चारों स्थान पर होते रहे।

गुरुभक्तों के विशाल सैलाब में धैर्य, तितिक्षा व अहोभाव की त्रिवेणी अद्भुत थी। गुरुभक्तों के दिल में गुरुपूर्णिमा महोत्सव व गुरुपूजा का जो पुण्यमय, प्रभुमय आनंद छलकता रहा, वह अवर्णनीय है। जो अनुपम आत्मसंतोष उनके चेहरों पर दिखता था, वह गुरुपूजा का ही प्रसाद था।

भोपाल २८ से ३० जून : म.प्र. की राजधानी में गुरुपूनम महोत्सव संपन्न हुआ। प्रथम दिवस वहाँ के राज्यपाल डॉ. भाई महावीर ने सपरिवार सद्गुरुदेव का दर्शन-सत्संग प्राप्त किया। म.प्र., छत्तीसगढ़, पं. बंगाल, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश एवं मध्य भारत के विभिन्न स्थानों से बड़ी संख्या में आये साधक-साधिकाओं ने गुरुपूजन कर गुरुपूर्णिमा मनायी। विशाल आश्रम प्रांगण भक्त समुदाय से ३ दिनों तक खचाखच भरा रहा।

एक ओर मनोकामना पूर्ति हेतु सिद्ध बड़बादशाह की परिक्रमा करने सुबह से शाम तक भक्तों की लंबी कतार रहती थी, तो दूसरी ओर मनोकामना सिद्ध होने पर अपनी मनौती रखने के लिए भी भाग्यशाली भक्तजन अपनी बारी के इंतजार में पंक्तिबद्ध खड़े थे।

मुंबई (महा.) १ से ३ जुलाई : पूज्य सद्गुरुदेव के प्यारे-दुलारे भक्तों की अधिकाधिक संख्या को देखते हुए मुंबई में पहली बार गुरुपूर्णिमा दर्शन महोत्सव का आयोजन किया गया। लोकलाड़ले संत श्री के दर्शनार्थ आयोजकों की आशा से कई गुना अधिक जनमेदनी पहुँची। बापू के प्यारे नजदीक से दर्शन की लालसा लिए पंक्ति में घंटों सहज भाव से खड़े रहे।

गुरुदर्शन, गुरुपूजा से शिष्यों को क्या मिल रहा था यह तो वे धनभागी शिष्य ही जान सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं। निगुरे लोगों की कल्पना में भी नहीं आ सकती ऐसी आध्यात्मिक पूँजी खुल आम लुटा रहे थे पूज्यपाद बापूजी। इस बहती ज्ञानगंगा में, सद्गुरु स्वामी लीलाशाहजी महाराज की लगायी इस आध्यात्मिक प्याऊ का जिसने थोड़ा भी आचमन लिया, वह धन्य-धन्य हो गया।

यह वह मधुशाला है जिसका एक जाम पी लेने पर पीनेवाला मतवाला हो जाता है, अद्भुत प्रभुमय सुख का रसपान करता है।

अमदावाद आश्रम में गुरुदर्शन महोत्सव **५ से ८ जुलाई** पूर्व तय था। ४ जुलाई पूज्यश्री के एकान्त व अज्ञातवास के लिए नियत था लेकिन भक्तों की तितिक्षा व विशाल संख्या को देखते हुए पूज्यश्री एकांत व अज्ञातवास के लिए पूर्व निर्धारित समय को रद्द करते हुए ४ जुलाई को ही आश्रम पहुँच गये। एक दिन पूर्व ही महोत्सव प्रारंभ हो गया। आश्रम की क्षमता से अधिक श्रद्धालुओं का आगमन हुआ। गुरुपूजन की तीव्र आकांक्षा में रात १२-१ बजे से ही स्नानादि से निवृत्त होकर साधकगण पंक्ति में खड़े हो गये। खड़े-खड़े घंटों बीत जाते, फिर भी थकान नहीं, चेहरे पर फरियाद की रेखाएँ नहीं... चित्त पर तितिक्षा और तप की झलक... इन दृश्यों को प्रत्यक्ष देखनेवाला ही भाव की गहनता को समझ सकता है।

चारों स्थानों का गुरुपूर्णिमा महोत्सव देखने के बाद लिखना पड़ता है कि पुण्यात्मा गुरुभक्तों एवं गुरुपूर्णिमा के लाबयान अवसर की झाँकी प्रस्तुत करने का सामर्थ्य बेचारी लेखनी में कैसे संभव हो सकता है ? धन्य है भारतवर्ष, जहाँ अब भी ऐसे सद्गुरु और सत्शिष्य उपलब्ध हैं।

कटक (उड़ीसा) में बाढ़ ग्रस्तों की सेवा...

कटक उड़ीसा में आयी हुई भयंकर बाढ़ के कारण असरग्रस्त लोगों की भोजन सेवा हेतु आश्रम की ओर से ६७ भोजनालय शुरू हो गये हैं एवं अन्य ३०-४० भोजनालय थोड़े ही समय में शुरू हो जायेंगे। इस दैवी सेवाकार्य में सेवा देने की इच्छावाले कटक के नजदीकी गाँवों के सेवाधारी साधक कटक समिति अथवा अमदावाद आश्रम का संपर्क करें। सेवाधारियों को आने-जाने का किराया आश्रम की ओर से दिया जायेगा।

बाढ़ की वजह से बेघर बने हुए लोगों के लिए ईंटों के पक्के मकान भी बनाके देना है। इस हेतु भी सेवाधारी वहाँ पहुँचकर सेवा का लाभ ले सकते हैं। बाढ़ ग्रस्तों की सेवा के लिए तत्काल मदद हेतु ५ लाख रुपये आश्रम की ओर से भेज दिये गये हैं।

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम : २७ से २९ जुलाई २००१, गीता भागवत सत्संग, प्रथम श्री सुरेशानंदजी द्वारा, मेघरज रोड, मोड़ासा। फोन : २२६२५, ४२९७६. ४ और ५ अगस्त २००१, रक्षाबंधन महोत्सव एवं पूर्णिमा दर्शन, संत श्री आसारामजी आश्रम, बील गाम, पादरा रोड, बड़ौदा। फोन : (०२६५) ३५६४४४, ३५७६४४. १० से १२ अगस्त २००१, जन्माष्टमी महोत्सव, संत श्री आसारामजी आश्रम, वरियाव रोड, जहाँगीरपुरा सूरत। फोन : (०२६१) २७७२२०१, ०२.

मध्य प्रदेश के राज्यपाल डॉ. भाई महावीर गुरुपूनम पर्व पर सपरिवार पधारे। पूज्य बापू का स्नेह-श्रद्धा से स्वागत करके पाश्चात्य रंग में रंगे भारतीय राजनेताओं को मानो सच्ची दिशा का संकेत कर रहे हैं। राज्यपाल पद से भी ऊँचे आत्मपद में पहुँचने की दिल में छुपी प्यास प्रगट कर रहे हैं। धन्य हैं ऐसे राज्यपाल !

मुंबई में पहली बार गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री विलासराव देशमुख और गृहराज्य मंत्री श्री कृपाशंकर, अपने साथी व लाखों गुरुभक्तों के साथ पूज्य बापू की ज्ञानगंगा में स्नान करते हुए।

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

वर्ष : १२
अंक : १०४
अगस्त २००१
भाद्रपद मास
विक्रम सं. २०५८

॥ ऋषि प्रसाद ॥

हिन्दी

वसुदेव सुतं देवं कंस चाणूरमर्दनम् । देवकी परमानंदं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम् ॥

जन्माष्टमी महोत्सव : १२ अगस्त २००१

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय, लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुति यज्ञ विभूषिताय, गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥

गणेश चतुर्थी : २२ अगस्त २००१